वीर शैव दर्शन में तत्त्वमीमांसा का स्वरूप

(Vīra Śaiva Darśana Meṃ Tattvamīmāṃsā Kā Svarūpa)

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की एम. फिल्. शोध-उपाधि हेतु प्रस्तुत
लघु शोध-प्रबन्ध

शोध-निर्देशक
डॉ. रामनाथ झा

शोधार्थी
प्रवीण कुमार द्विवेदी

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली – 67
भारत

2012

विशिष्टसंस्कृताध्ययनकेन्द्रम्
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली - ११००६७

SPECIAL CENTRE FOR SANSKRIT STUDIES
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI – 110067

24th July, 2012

CERTIFICATE

The dissertation entitled *"वीर शैव दर्शन में तत्त्वमीमांसा का स्वरूप"* submitted by Praveen Kumar Dwivedy to **Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi – 110067** for the award of degree of **Master of Philosophy** is an original research work and has not been submitted so far, in part or full, for any other degree or diploma in any University. This may be placed before the examiners for evaluation.

Kumar

Prof. Shashiprabha Kumar
(Chairperson)

24.07.12

Dr. Ram Nath Jha
(Supervisor)

Dr. Ram Nath Jha
Assistant Professor
Centre for Sanskrit Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067

विशिष्टसंस्कृताध्ययनकेन्द्रम्
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली - ११००६७

SPECIAL CENTRE FOR SANSKRIT STUDIES
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI – 110067

24th July, 2012

DECLARATION

I declare that the dissertation entitled '*वीर शैव दर्शन में तत्त्वमीमांसा का स्वरूप*' submitted by me for the award of degree of **Master of Philosophy** is an original research work and has not been previously submitted for any other degree or diploma in any other institution/University.

Praveen Kumar Dwivedy

(PRAVEEN KUMAR DWIVEDY)

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।

सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥

(ऋग्वेद – ८.१००.११)

आत्मनिवेदन

सर्वप्रथम मैं अपने कुल देवता अनन्त बलवन्त सन्त श्री हनुमन्त लाल जी के चरणों में प्रणाम निवेदित करता हूँ, जिन्होंने मेरे आत्मविश्वास का सदैव वर्धन किया। मैं अपने पितामह स्व० दीनानाथ द्विवेदी के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझमें संस्कृत पढ़ने के लिए अद्‌भुत प्रेरणा का सञ्चार किया। बाल्यावस्था में मुझसे संस्कृत श्लोकों को सुनकर वे आह्लादित होते थे। संस्कृत महाविद्यालय में नामाङ्कन से पूर्व ही उनका देहान्त हो गया किन्तु उनके सङ्कल्प ने मेरे जीवन को धन्य कर दिया। आज मुझे सबसे अत्यधिक उनकी कमी का अनुभव हो रहा है। मेरी स्व० पितामही ने भी मुझे सदैव सत्पथ पर चलने की प्रेरणा दी, अत: उनके चरणों में भी मैं प्रणाम करता हूँ। मेरे मातामह श्री सुदामा पाठक मेरे लिए सदैव प्रेरणा स्त्रोत रहे हैं, अत: उनके चरणारविन्द में मै प्रणाम निवेदित करता हूँ। मेरी मातामही का भी सदैव पुत्रवत् स्नेह मुझपर रहा, अत: उनके चरण-कमल भी मेरे लिए वन्दनीय है। देवतुल्य मेरे पिताजी गायक श्री बलिराम द्विवेदी **"अनमोल"** ने जो मेरे लिए किया है, उसको भावनाएँ ही अनुभूत कर सकती है, लेखनी नही। मेरे पिताजी ने मुझे प्रत्येक सुविधा प्रदान की, जिससे मेरी शिक्षा में किसी प्रकार की बाधा कदापि नही आई। मेरी शिक्षा के लिए आवश्यकतानुसार उन्होंने ऋण भी लिया। उनके प्रत्येक उपदेशों को मैं दोहराता रहता हूँ, जिससे मुझे शक्ति मिलती है। उनके सदुपदेश के कारण ही मैं शाकाहारी बन पाया। "अपने ऊपर किसी का एहसान नही लेना चाहिए" पिताजी के इस उपदेश ने मुझमें स्वाभिमानी बनने की प्रेरणा प्रदान की। अत: उन चरण-कमलों का मैं बारम्बार अभिनन्दन करता हूँ। मेरी माताजी ने मेरी उच्च शिक्षा की भावनाओं को सदैव ही प्रबल किया। उन्होंने मुझे नौकरी न करने की सलाह दी और सदैव अपने पढ़ाई पर ध्यान देने के लिए प्रेरित किया। उस मातृशक्ति को मैं प्रणाम करता हूँ, जिनके स्मरण मात्र से ही मेरी सारी चिन्ताएँ दूर हो जाती है। मैं अपनी धर्मपत्नी वन्दना द्विवेदी का भी आभार प्रकट करना चाहूँगा, जो मेरी मानसिक शान्ति और ध्यान केन्द्रीकरण की प्रमुख प्रेरणा है। उनके मेरे जीवन में पदार्पण के पश्चात् प्रसन्नता का ही समावेश हुआ है। कुछ काल में ही मैं पिता बनने जा रहा हूँ, अत: उस गर्भस्थ शिशु का भी आभार प्रकट करना मेरा दायित्व है। प्रेम और स्नेह की प्रतिमूर्ति मेरे बड़े भैया श्री अरविन्द द्विवेदी ने भी मुझे उच्च शिक्षा के लिए सदैव प्रेरित किया, अत: उनका भी मैं कृतज्ञ हूँ। मेरे मँझले भैया अनिल द्विवेदी ने भी मेरा सदैव सहयोग किया है, अत: उनका भी मैं आभारी हूँ। मैं अपनी दोनों भ्रातृजायाओं (श्रीमती रिन्कू देवी एवं श्रीमती अनीता देवी) के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने मुझे पुत्रवत् स्नेह प्रदान किया। साथ ही भ्रातृपुत्र-पुत्रियों निर्मल, आकृति, ऋतु, आर्यन एवं अञ्जलि को भी साधुवाद देता हूँ, जिनको

देखकर मैं सदैव प्रसन्नचित्त रहता हूँ। इस काल में दु:ख का विषय भी है क्योंकि हाल ही में मेरे भतीजे छ: महीने के शिशु अमन का देहान्त हो गया है। अत: मैं स्व० अमन द्विवेदी के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वो उसकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

श्री कन्हैयानन्द उपाध्याय, श्री विजयानन्द उपाध्याय, श्रीमती आरती देवी के चरणों में भी मैं प्रणाम निवेदित करता हूँ, जिन्होंने मुझे पुत्रवत् स्नेह प्रदान किया। श्री अवधेशानन्द उपाध्याय, श्री विवेकानन्द उपाध्याय, श्री अजयानन्द उपाध्यय, श्री दयानन्द उपाध्याय एवं श्री सत्यानन्द उपाध्याय के प्रति भी मै कृतज्ञ हूँ। पुष्पलता, पुष्पाञ्जलि, निशान्त नीरज, घनश्याम, दीपक, अनुज, प्रीताञ्जलि, रवि, मोहित, अविनाश, हँसमुख, नुपूर एवं महक के साथ ही वेदप्रकाश राय, नागेन्द्र सिंह, अमर कुमार एवं गुड्डू आदि भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिनके अपूर्व स्नेह के कारण मुझे सदैव आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती रही।

श्री नवनाथ पाठक, श्रीमती मालती देवी, श्री राजू पाठक, श्री राजेश पाठक, श्री देवता त्रिपाठी, श्रीमती शान्ति देवी, श्री दीपू त्रिपाठी, श्री सुबाष पाठक, श्रीमती श्रीकान्ति देवी, श्री सुरेश पाठक, श्री कपिलदेव पाठक, श्री राकेश पाठक, श्री सतीशजी, गुड़िया पाठक, श्री जगदीश त्रिपाठी, श्रीमती बसन्ती देवी, स्व० रामनारायण मिश्र, मोहनजी, श्री प्रभुनाथ मिश्र, स्व० रघुनाथ उपाध्याय के चरण कमलों में मै प्रणाम निवेदित करता हूँ, जिनके प्रति उद्भूत श्रद्धा ने अन्यान्य कार्यों में सदैव मेरा सहयोग किया। सन्दीपजी, बबली, आशाजी, दीपक, सानू, पलक, आदित्य, राजन, अनामिका, सोनू एवं खुशी आदि भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिनके स्नेह से मै सदैव आह्लादित रहा।

मैं अपने प्राथमिक पाठशाला के शिक्षक श्री सूर्यदेव दूबे के चरणों में प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने मेरे जीवन का प्रथम संस्कृत श्लोक मुझे स्मरण करवाया था। डॉ० शरदिन्दु त्रिपाठी (दर्शन विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी) एवं डॉ० जितेन्द्र द्विवेदी (व्याख्याता, कमला महाविद्यालय, गोपालगंज) के प्रति भी मै कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने संस्कृत पढ़ने के लिए मुझे सदैव प्रोत्साहित किया। साथ ही स्वग्राम के श्री अक्षयवट मिश्र, श्री बब्बन मिश्र, श्री विन्ध्यवासिनी प्रसाद श्रीवास्तव, श्री वैद्यनाथ मिश्र, श्री अचलदेव त्रिपाठी, श्री भानुदेव त्रिपाठी, श्री नागेन्द्र त्रिपाठी, श्री अवधेश पाण्डेय, श्री सत्यदेव पाण्डेय, श्री हरिशङ्कर द्विवेदी, श्री नन्दकुमार द्विवेदी, श्री सुनिल द्विवेदी, श्री देवेन्द्र द्विवेदी, श्री विजय त्रिपाठी, श्री सोमनाथ पाण्डेय, श्री लक्ष्मण उपाध्याय, श्री मिथिलेश त्रिपाठी, श्री मार्कण्डेय मिश्र, श्री प्रमोद मिश्र, श्री मुनिशङ्कर मिश्र, श्री प्रत्युष त्रिपाठी, श्री शशिकान्त त्रिपाठी, श्री पङ्कज त्रिपाठी एवं श्री मृत्युञ्जय मिश्र का भी आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने मेरी प्रतिभा को सदैव प्रोत्साहित किया। ग्रामीण मित्रों में मैं विमलेन्दु त्रिपाठी, शशिकांत त्रिपाठी, अमोद शाही,

विन्ध्यवासिनी शाही, कमेन्द्र मिश्र, सुशान्त शाही, उदयशङ्कर पाण्डेय, सुवीर त्रिपाठी, दयानन्द त्रिपाठी, दयानन्द उपाध्याय, शिवचन्द्र सिंह, राजेश शर्मा, दीपू त्रिपाठी, अमलेन्दु त्रिपाठी एवं अमृतेश मिश्र का भी आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने सदैव शिक्षा को प्राथमिकता देते हुए अपने सद्विचारों से मुझे प्रेरित किया । साथ ही पवन, विकास, सन्नी, शशि, अम्बुज, सतीश, शैलेश, दीपू, रविकान्त, श्रीकान्त, पूर्णिमा, अनु, राजू, रितेश, लक्ष्मण, गणेश, पूजा, दीपक, छोटन, अनुराधा, दीपू, नीपू, मनीषा, सन्दीप, आनन्द, ऋषिकेश, दिलीप, एवं गुञ्जन आदि भी स्नेह के कारण धन्यवाद के पात्र हैं ।

श्रीच्छत्रधारि संस्कृत महाविद्यालय, हथुआ, गोपालगंज का मैं आजीवन ऋणी रहूँगा, जिसने मुझमें अवबोध क्षमता के साथ ही शिक्षा के प्रति निष्ठा प्रदान की । एतदर्थ डॉ० शारदानन्द मिश्र (भूतपूर्व प्राचार्य) श्री बी० के० त्रिपाठी (सम्प्रति प्राचार्य), श्रीमती तृप्ति कुमारी पाण्डेय (साहित्य विभागाध्यक्षा), श्रीधरनारायण झा (व्याकरण विभागाध्यक्ष), डॉ० चन्द्रमोहन झा (ज्योतिष विभागाध्यक्ष), श्री बृजकिशोर पाण्डेय (वेद विभागाध्यक्ष), श्री विजय त्रिपाठी (भूगोल विभागाध्यक्ष), श्री नागेन्द्र पाण्डेय (साहित्य विभाध्यक्ष), स्व० रामनगीना मिश्र, श्री जितेन्द्र पाण्डेय (सन्यासीजी), श्री अरविन्द त्रिपाठी, श्री तुमनाथ पाठक, श्री बनारस चौधरी, स्व० नन्दकिशोर मिश्र एवं श्री रवीन्द्र जी का सदैव आभारी रहूँगा । साथ ही श्री विद्यानंद उपाध्याय (भूतपूर्व प्राचार्य, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद महाविद्यालय, हथुआ, गोपालगंज) एवं श्री नीलमणि त्रिपाठी के सद्विचारों से भी मै प्रभावित हुआ, अत: उनके चरणारविन्द भी श्रद्धेय हैं । मैं इन गुरूजनों के चरणों में कोटिश: प्रणाम करता हूँ । एतदर्थ मैं डॉ० उदयशङ्कर पाण्डेय (भूतपूर्व प्राचार्य, संस्कृत महाविद्यालय, हथुआ, गोपालगंज (सम्प्रति) प्राचार्य, स्नातक महाविद्यालय, महाराजगंज, सिवान) का आजीवन कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझमें संस्कृत की अवबोध क्षमता विकसित की एवं विभिन्न पुरस्कारों से मुझे पुरस्कृत भी किया । मेरी वास्तविक गुरू शारदातुल्या मातृस्वरूपा डॉ० नीलम श्रीवास्तव (हिन्दी विभागाध्यक्षा, श्रीच्छत्रधारी संस्कृत महाविद्यालय, हथुआ, गोपालगंज) के चरणों में मेरा बारम्बार प्रणाम है, जिन्होंने ही मेरी बौद्धिक क्षमता का विस्तार किया और उसमें शिक्षा के माध्यम से प्रत्येक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अद्‌भुत प्रेरणा का सञ्चार किया । उनके सदुपदेशों के बिना मैं स्वंय को आज यहाँ सोच भी नही सकता था । उन्होंने केवल सदुपदेश ही नही दिया अपितु पुत्रवत स्नेह भी मुझे प्रदान किया तथा प्रत्येक परिस्थिति में मेरी सहायता भी की । एतदर्थ मै ठाकुर श्री ज्वाला प्रसाद श्रीवास्तव, श्री अस्तित्व श्रीवास्तव, श्रीमती शिखा श्रीवास्तव, सुश्री संवेदना स्मृति एवं सुश्री चेतना जागृति का भी आभार प्रकट करता हूँ, जिनके सद्विचारों से मैं सदैव प्रभावित हुआ । मैं धन्य हूँ कि इस परिवार का स्नेहपात्र बन पाया, जिसमें भावनाओं एवं सिद्धान्तों को सहज रूप में प्राथमिकता प्राप्त होती है । अपने महाविद्यालय के अग्रजों में मैं श्री भगवतीशरण त्रिपाठी, श्री अङ्गद चौबे, श्री प्रेम पाठक, श्री अमित पाठक, श्री

अखिलेश त्रिपाठी, श्री राजू दूबे, श्री अरविन्द पाण्डेय, श्री सत्येन्द्र त्रिपाठी, श्री विनय त्रिपाठी, श्री अङ्केश उपाध्याय, शिप्राजी एवं श्री कृपाशङ्करजी, अमित त्रिपाठी का आभार प्रकट करता हूँ। साथ ही ब्रजेन्द्रजी, सत्येन्द्रजी, जयप्रकाश, चन्द्रभूषण, इन्द्रजीत, रितेश्वर, अखिलेश्वर, राजेश, निभा, शशिकला, मञ्जूषा, ममता, रिन्कू, रामकृष्ण, चन्दन, प्रेम, स्नेहा, आनन्द, अमन, प्रतिभा, शशिभूषण, प्रीति, विनीत, राजू, दुर्गादयाल, अजय, विजय, हरेराम, दीपक, सुबाष, धनञ्जय, पङ्कज, वरूण, उजाला, राहुल, कुमुद एवं अनूपचन्द्र को साधुवाद देता हूँ, जिन्होंने मुझे अद्भुत स्नेह प्रदान किया।

इन सबकी शुभाकाङ्क्षा से ही मेरा जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, परास्नातक कक्षा में नामाङ्कन हो पाया। इस विश्वविद्यालय में व्यतीत किये गये स्वर्णिम क्षण अविस्मरणीय रहेंगे। यहाँ के गुरूजनों के वर्णन के लिए शाब्दिक साधन पर्याप्त नही है, अत: उन अनुभूतियों को अभिव्यक्त करना मेरे लिए असम्भव है। फिर भी मैं अपने विश्वविद्यालयीय गुरूजनों के विषय में किञ्चित् वक्तव्य देने का दु:साहस करूँगा। प्रो० शशिप्रभा कुमार की पाठन शैली में साक्षात् माँ शारदा का प्रतिरूप दृष्टिगोचर होता है अत: मैं श्रद्धेय मातृशक्ति के चरणारविन्द में प्रणाम निवेदित करता हूँ। डॉ०रामनाथ झा के अध्यापन में तो वैसे अनेक विषयों का ज्ञान होता है किन्तु उनके वेदान्त पढ़ाने से प्रत्येक छात्र अपने जीवन को चिन्तामुक्त समझता है। इनके निर्देशन में ही मेरा शोध कार्य हुआ है, अत: माता रेखा झा सहित आप गुरूश्रेष्ठ को प्रणाम है। डॉ० सन्तोष कुमार शुक्ल ने सदैव सम्यक् अध्यापन से मेरा मार्गदर्शन किया, अत: आप गुरूश्रेष्ठ के चरण-कमलों में मैं प्रणाम निवेदित करता हूँ। डॉ० हरिराम मिश्र के व्याकरण-अध्यापन के कारण ही मैने अपने अध्ययन में संस्कृत की अशुद्धियों की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया, अत: आप गुरूश्रेष्ठ के चरणारविन्द भी मेरे लिए श्रद्धेय है। डॉ०रजनीश मिश्र ने शैव दर्शन की पृष्ठभूमि से हमारा मार्ग निर्देशन किया, जिससे मेरी रूचि शैव दर्शन में बढ़ी, अत: आप गुरूश्रेष्ठ को मैं प्रणाम निवेदित करता हूँ। डॉ०गिरीशनाथ झा के संगणक पढ़ाने से ही मैं प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध का स्वंय टङ्कण करने में समर्थ हुआ, अत: आपके चरणों में मैं प्रणाम निवेदित करता हूँ। डॉ०चौडुरि उपेन्द्र राव के अद्भुत अध्यापन के कारण मैने संस्कृत साहित्य का ज्ञान प्राप्त किया, अत: आप गुरूश्रेष्ठ के चरणों में प्रणाम निवेदित करता हूँ। साथ ही जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय एवं विशिष्टसंस्कृताध्ययन केन्द्र के प्रत्येक अधिकारी एवं कर्मचारी का भी आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने मेरे प्रत्येक कार्यालयीय कार्य में सदैव पूर्ण रूपेण सहयोग प्रदान किया।

विशिष्टसंस्कृताध्ययन केन्द्र के अग्रजों में मैं अनीता दीदी, अभयजी, दिवाकरजी, बृजेन्द्रजी, दिवाकरमणिजी, वेदजी, पूरणजी, श्रुति दीदी, सूर्यकमलजी, मोनिका दीदी, मोहनजी, विजयजी, अनिलजी, देवाशीषजी, नीलम दीदी, सुषमा दीदी, विश्वबन्धुजी, मुकेशजी,

ममता दीदी, आशुतोषजी, मनीषा दीदी, प्रियङ्का दीदी, रजनीशजी, बबलूजी, अशोकजी, विश्वेशजी, नृपेन्द्रजी, जया दीदी, देवलीना दीदी एवं शशि दीदी का आभार प्रकट करता हूँ। शिवलोचनजी ने एक सच्चे मित्र की भूमिका के साथ ही प्रत्येक कार्य में पूर्णरूपेण मेरा सहयोग किया, अत: मै उनका आभार प्रकट करता हूँ। मणिशङ्कर द्विवेदी ने नीतिगत बातों एवं उचित सलाहों से मेरी शिक्षा को ही केवल नियोजित नही किया, अपितु मेरे जीवन के प्रत्येक सुख दु:ख के उचित मार्गदर्शक रहे, अत: मैं उनका भी आभार प्रकट करता हूँ। सर्वेशजी ने परास्नातक कक्षा के समय मेरी अत्यधिक सहायता की, अत: उनका आभार मैं प्रकट करता हूँ। अरविन्दजी ने भी मेरी उत्कृष्ट भावनाओं का उचित मार्गदर्शन किया, अत: उनके प्रति मै कृतज्ञ हूँ। साथ ही कपिल, चमन, उमा, सावित्री, पूनम, प्रीति, वन्दना, कामिनी, प्रियङ्का, पवित्रा, राजेश, सत्यनारायण, विकास, रोहित, दिनेश, सोमबीर, सन्दीप एवं अनिल के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने मेरी प्रतिभा को प्रोत्साहित किया। राजमणि त्रिपाठी ने भी उचित मार्गदर्शन से मेरा ज्ञान वर्धन किया, अत: उनके प्रति भी मै कृतज्ञ हूँ। अश्विनी त्रिपाठी, निखिल श्रीवास्तव, विवेक सिंह एवं त्रिगुणजी के प्रति भी मै कृतज्ञ हूँ, जिनके मार्गदर्शन से मेरे अन्दर विनय रूपी शील का सञ्चार सदैव होता रहा। मुजीब बी (केरल) मेरा एक ऐसा मित्र रहा, जिसकी प्रेरणा और सहायता के भाव ने मुझे सदैव परोपकार करने के लिए प्रेरित किया, अत: उसका मैं आभार प्रकट करता हूँ। चान्ग लू (चीन) ने भी अन्तर्जाल के माध्यम से प्रश्नोतर करके मेरा मार्गदर्शन ही किया, अत: उसके प्रति भी मै कृतज्ञ हूँ। प्रचेतस की उत्कृष्ट जिज्ञासाएँ मेरे लिए सदैव प्रेरणाप्रद रही, अत: वह भी साधुवाद का पात्र है। प्रदीपजी ने सदैव शिक्षा को व्यवहारिक रूप प्रदान करने पर बल दिया, अत: वे भी धन्यवाद के पात्र है। साथ ही रिन्कू, घनश्याम, मेघराज, देवेन्द्र, हरीश, आरती, नीरजा, पूजा, शुभम, अरूणिमा, प्रेमपाल भी साधुवाद के पात्र है, जिनकी शिक्षा के प्रति लगन एवं संघर्ष के भाव ने मुझमें प्रेरणा का सञ्चार किया। डॉ० देवेन्द्र ओझा (व्याख्याता, आत्माराम महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय) का भी आभारी हूँ, जिनके व्यवहारिक विचार मेरे लिए उत्प्रेरक थे। डॉ० करतार शर्मा का उचित मार्गदर्शन भी मेरे लिए प्रेरणाप्रद रहा अत: मैं उनका भी आभार प्रकट करता हूँ। मैं अपने ग्रामीण देवताओं से लेकर राष्ट्र के प्रमुख तीर्थस्थलों को भी प्रणाम निवेदित करता हूँ, जिसने मुझमें अद्‌भुत शक्ति का सञ्चार किया। एतदर्थ वाराणसी, विन्ध्याचल, जम्मू-कश्मीर, पटना, प्रयाग, हरिद्वार, ऋषिकेश एवं मथुरा आदि भी वन्दनीय हैं, जहाँ के शिक्षा संस्थानों के पुस्तकालयों एवं संग्रहालयों का मैने सदुपयोग किया। डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य के प्रति मै आजीवन कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मेरा मार्गदर्शन करते हुए मुझे शोध-सामग्री उपलब्ध करवायी। इसके लिए मै डॉ० ओमप्रकाश स्वामी, श्री लिङ्गाड़ेजी एवं श्री सिद्धरामजी के साथ ही जङ्गम वाड़ी मठ के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ।

मै विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का भी आभारी हूँ, जिसने मुझे शोध कार्य के लिए छात्रवृत्ति प्रदान किया । अन्त में मै अपने पूज्य पिताश्री द्वारा भोजपुरी भाषा में विरचित छन्द के द्वारा अपने वक्तव्य को समाप्त करता हूँ-

"बानी अज्ञानी बुझात शब्दारथ भाषा भाव भवारथ नइखे,

पांव पड़ी करी प्रार्थना शुद्ध स्वारथ बा परमारथ नइखे ।

बात बताई यथारथ रउवा से पाले कुछु पुरूषारथ नइखे,

चारि पदारथ मोर मनोरथ दे दी केहु त हितारथ नइखे ॥" (श्री वैद्यनाथ चालीसा, पृष्ठ १०)

दिनाङ्क – 24/07/2012 **प्रवीण कुमार द्विवेदी**

प्राक्कथन

"तव तत्त्वं न जानामि, कीदृशोऽसि महेश्वर ।

यादृशोऽसि महादेव, तादृशाय नमोऽस्तुते ॥"

मानव जीवन रहस्यात्मक है । यहाँ उसके मस्तिष्क में अनेकों प्रकार के विचार सर्वदा ही आते रहते हैं । उसका जन्म क्यों हुआ है ? वह कहाँ से उत्पन्न हुआ है और मृत्यु के उपरान्त वह कहाँ जाएगा ? वह शरीर मात्र है या इससे भिन्न है ? इत्यादि प्रश्न मानव को अतीन्द्रिय सत्ता के ज्ञान के लिए प्रेरित करते हैं । इन प्रश्नों के उत्तर के लिए वह तर्क, शास्त्र एवं अनुभव का उपयोग करता है । तर्क उसकी बौद्धिक क्षमता का वर्धन करता है । बुद्धि से वह निश्चय कर पाता है कि उसका ज्ञान प्रमाण पुरस्सर है कि नही । शास्त्र उस ज्ञान के स्वरूप का उद्घाटन करता है । नित्यता और अनित्यता का दिग्दर्शन कराने वाला शास्त्र होता है । साथ ही शास्त्र प्रवृति और निवृति का भी साधन होता है । अनुभव ज्ञान की पराकाष्ठा का अपर अभिधान है । अनुभवात्मक ज्ञान सर्वश्रेष्ठ माना गया है । ज्ञान को आत्मसात करना ही अनुभव है । इसमें ज्ञान और कर्म दोनो ही श्रेष्ठ माने गए हैं । अनुभवी व्यक्ति ज्ञान और कर्म दोनो को ही महत्त्वपूर्ण मानता है । इस सृष्टि में व्यक्ति एक क्षण भी कर्म के बिना नही रह सकता है । हमारी शिक्षा का उद्देश्य भी यही है कि हमारा आचरण उचित होना चाहिए । हमें शत्रुता को समाप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि शत्रुता में केवल विनाश ही प्राप्त होता है । हमें जाति-प्रथा, दहेज प्रथा और छूआछूत जैसी कुरीतियों को समाप्त करना चाहिए । हमारे आचरण से ही हमारी शिक्षा मुखरित होती है अत: कहा भी गया है कि ज्ञानी को आचारवान होना चाहिए । इसलिए वीर शैव दर्शन में आचारण को अत्यधिक प्राथमिकता प्रदान की गई है । तदनुसार जो वृक्ष फलीभूत होते हैं, वे विनय पूर्वक झुक जाते है । झुके हुए वृक्ष आंधी में भी नही टूटते हैं किन्तु जो वृक्ष नही झुकते उन्हें प्रकृति तोड़ डालती है । अत: विद्वान को नम्र होना चाहिए । वीर शैव दर्शन में औषधि का लेप या ग्रहण भी उतना ही आवश्यक है, जितना की उसका ज्ञान । पङ्वन्धन्याय से ही लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है । इसलिए शास्त्रों में **"ज्ञानं विज्ञानसहितं"** की बात कही गयी है ।

प्रथमत: भेदात्मक सृष्टि में अभेदात्मक स्थिति का होना आत्मिक शान्ति प्रदान करता है । हम लौकिक व्यवहार में कुछ तथ्यों की ओर ध्यान नही देते हैं, जिसके कारण हम अपनी वास्तविक स्वरूप का दिग्दर्शन नही कर पाते हैं । हम मूर्ति के समक्ष भी अपनी आँख मूंदकर प्रार्थना करते हैं । तात्पर्य है कि हम मूर्ति की बाह्य

सौन्दर्य से प्रभावित नही होते है । हम उस तत्त्व का अभिवादन करते हैं, जो सृष्टि के प्रत्येक कण में है । अपने लिए मै का सम्बोधन करते हैं एवं पुन: मेरा हस्त और मेरी लेखनी भी कहते है । इससे सिद्ध होता है कि हम शरीर मात्र न होकर इससे भिन्न है । हमारा तात्त्विक स्वरूप अन्य है, जो हमारे इन्द्रियों के परे है । वस्तुत: हम आत्मस्वरूप है, इसलिए तो हमारे लिए सुषुप्ति अवस्था अति आवश्यक होती है । हमें किञ्चित् काल पश्चात् निद्रा के शरण में जाना ही पड़ता है, नही तो केवल जागने से हमारी मृत्यु भी हो सकती है । स्वप्नावस्था में हमारा मन व्याकुल रहता है और स्वप्न की कुछ घटनाएँ भी स्मृति पटल पर रहती है किन्तु सुषुप्ति अवस्था में हमें यह भान भी नही होता है कि हम कहाँ थे । सुषुप्ति अवस्था से जाग्रतावस्था में आने पर हम अपने को नव ऊर्जा से युक्त पाते है । ये आनुभविक सत्यता है, जिसमें स्थूल शरीर का सम्बन्ध जाग्रतावस्था से, सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध स्वप्नावस्था से एवं कारण शरीर का सम्बन्ध सुषुप्ति अवस्था से रहता है । वीर शैव दर्शन में इनको क्रमश: त्यागाङ्ग, भोगाङ्ग एवं योगाङ्ग कहा गया है ।

शिव या रूद्र सृष्टि के आदिदेव माने गए है । उनका स्वयंभू अभिधान भी इसी तथ्य को दर्शाता है । सम्पूर्ण सृष्टि के कारण होते हुए भी शिवात्मक सत्ता का अकारण होना उसके विभुत्व को स्थापित करता है । इस व्यापक सत्ता का वर्णन लौकिकता एवं अलौकिक दोनों प्रकार से दृष्टिगोचर होता है । लौकिक शिव सगुण, गिरिजापति, आशुतोष एवं बाघम्बरी आदि अभिधानों से विभूषित होते हैं तो अलौकिक शिव निर्गुण, निराकार है । यह लौकिक शिवत्व भी उस निर्गुण परब्रह्म शिव की लीला का ही प्रतिफलन है । ये शिव विश्व की प्राचीन सभ्यता के देवता हैं । हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की खुदाई में शिवमूर्ति के अवशेष का मिलना भी इस तथ्य की ही पुष्टि करता है । शिव की शिवता भारत में एक समान व्याप्त है । सम्पूर्ण भारत में विद्यमान शिव के ज्योतिर्लिङ्गों से भारत की संस्कृति निरन्तर प्रवाहमान रहती है । शिव की पूजा में जातिभेद करना पाप माना जाता है । जिसको भी शिव के प्रति भक्ति उत्पन्न हो गयी, वही उनकी अर्चना कर सकता है । शिव का आशुतोष एवं औढरदानी अभिधान शिवभक्तों के लिए आह्लादकारक है क्योंकि वें शीघ्र ही प्रसन्न होते है और प्रसन्न होने पर वरदान रूप में मनवांछित फल प्रदान कर सकते हैं । शिव-पूजन की सामग्री सर्वत्र सहज ही उपलब्ध हो जाया करती है । वीर शैव दर्शन में स्वीकृत छत्तीस तत्त्वों से किसी भी तत्त्व को शिव मानकर उसकी उपासना करने से शिव की ही प्राप्त होती है । इसके लिए हमें मन्दिर भी जाने की आवश्यकता नही है । हम प्रकृति के प्रत्येक कण में शिव का आभास कर सकते हैं । इससे हमारे द्वेष, लोभ एवं क्रोध आदि दुर्गुणों का निवारण होगा । यह प्रवृत्ति भेदात्मक सृष्टि में अभेदात्मक दृष्टि है और यही विश्व की सम्पूर्ण समस्याओं का एकमात्र उपचार है ।

इस लघु शोध-प्रबन्ध के प्रारम्भिक आत्मनिवेदन में उन अविस्मरणीय व्यक्तियों का स्मरण किया गया है, जो शोधार्थी के अध्ययन के प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। तत्पश्चात् विषय-सूची के बाद प्राक्कथन दिया गया है। इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में प्रस्तुत विषय की शोधार्हता, प्रविधि एवं परियोजना की चर्चा की गयी है। एतदर्थ उस अध्याय का बिन्दुओं एवं उपबिन्दुओं में विभाजन करके उसका विवेचन किया गया है। द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत वीर शैव दर्शन की परम्परा को दर्शाया गया है। इस अध्याय में वेद एवं आगम का सम्बन्ध, वीर शैव के भेद, पर्याय तथा उसके आचार्य आदि का संक्षिप्त वर्णन किया गया है, जिससे वीर शैव दर्शन के अध्येता को उसकी पृष्ठभूमि का ज्ञान हो सके। एतदर्थ वीर शैव के अनुबन्ध-चतुष्टय की भी विवेचना की गयी है। तृतीय अध्याय में वीर शैव दर्शन में स्वीकृत छत्तीस तत्त्वों की परिभाषाओं के साथ ही इस दर्शन के प्रमुख बिन्दुओं का भी संक्षिप्त वर्णन किया गया है। चतुर्थ अध्याय में वीर शैव दर्शन की वर्तमान समय में प्रासङ्गिकता को दर्शाया गया है। एतदर्थ उसके सामाजिक, राजनैतिक, दार्शनिक एवं आर्थिक चिन्तन की भी संक्षिप्त चर्चा की गयी है। उपसंहार में उन तथ्यों को दर्शाया गया है, जो प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध की आवश्यकता को दर्शाता है। अन्ततः सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची भी अकारादि क्रम से दी गयी है। शोधार्थी द्वारा किसी नवीन वस्तु की उद्भावना नही करके उसका नवीन नियोजन किया गया है। जैसा कि जयन्त भट्ट ने कहा है :-

"कुतो वा नूतनं वस्तु वयमुत्प्रेक्षितुं क्षमाः।

वचोविन्यासवैचित्र्यमात्रमत्र विचार्यताम्॥" (न्यायमञ्जरी, १/१/८)

विषय-सूची

	पृष्ठ-संख्या
❖ **आत्म-निवेदन :-**	I - VI
❖ **प्राक्कथन :-**	VII - IX
❖ **प्रथम अध्याय :-**	1 - 13
विषय की शोधार्हता, प्रविधि एवं परियोजना :-	
▪ विषय-क्षेत्र एवं उद्देश्य	1 - 4
▪ विषय चयन का औचित्य	5
▪ प्रस्तुत क्षेत्र में विद्यमान पूर्ववर्ती शोध कार्य	5 - 6
▪ पूर्ववर्ती शोध कार्यों से प्रस्तुत शोध कार्य की विशिष्टता	7
▪ शोध शीर्षक की सार्थकता	7 - 9
▪ शोध प्रबन्ध हेतु उपयोगी प्रमुख स्रोत	9 - 11
▪ शोध-प्रविधि	11 - 12
▪ प्रस्तावित अध्याय विभाजन	12
▪ सन्दर्भिका	12 -13
❖ **द्वितीय अध्याय :-**	14 - 42
वीर शैव दर्शन की परम्परा :-	
▪ वेद एवं आगम	14 - 16
▪ आगम	17
▪ आगमों के भेद एवं सम्प्रदाय	17 - 23
▪ वीर शैव की आगममूलकता	23
▪ वीर शैव अभिधान योग्यता	23 - 24
▪ वीर शैव के पर्याय	24 - 25

- वीर शैव के अवान्तर भेद 26 - 28
- वीर शैव के आचार्य 28 - 38
- वीर शैवों के अनुबन्ध-चतुष्टय 38 - 40
- सन्दर्भिका 40 - 42

❖ **तृतीय अध्याय :-** **43 - 78**

<u>वीर शैव दर्शन की तत्त्वमीमांसा :-</u>

- तत्त्व 43 - 44
- विभिन्न दार्शनिक मत में तत्त्व विचार 44 - 45
- प्रमुख वेदान्त सम्प्रदाय के तत्त्व 45 - 46
- तत्त्वमीमांसा 46 - 47
- छत्तीस तत्त्वों में शिव - तत्त्व 47 - 50
- शिव के विशेषण 50 - 51
- शिव नाम का महत्त्व 51
- आभासवाद एवं अविकृत परिणामवाद 51 - 52
- पञ्चकृत्य 52 - 53
- छत्तीस तत्त्वों में शक्ति - तत्त्व 54 - 56
- छत्तीस तत्त्वों में सदाशिव - तत्त्व 56 - 57
- पञ्चमुख 57 - 58
- छत्तीस तत्त्वों में ईश्वर, सद्विद्या एवं माया - तत्त्व 58 - 59
- पञ्चकञ्चुक 59 - 60
- छत्तीस तत्त्वों में पुरूष तत्त्व 60 - 61
- त्रिविध शरीर 61 - 62
- त्रिविध मल 62 - 63
- छत्तीस तत्त्वों में प्रकृति - तत्त्व 64
- त्रिविध अन्त:करण 64 - 65

- ज्ञानेन्द्रिय 65 - 66
- कर्मेन्द्रिय 67
- तन्मात्र 67 - 68
- महाभूत 68 - 72
- प्राण 72 - 73
- सन्दर्भिका 73 - 78

❖ **चतुर्थ अध्याय :-** **79 - 100**

<u>वीर शैव दर्शन की वर्तमान समय में प्रासङ्गिकता :-</u>

- वीर शैव दर्शन की सामाजिक स्थिति 80
- जाति-प्रथा का विरोध 80 - 81
- परिश्रम का महत्त्व 81 - 82
- गुरू का महत्त्व 82 - 83
- प्रकृति का सम्मान 83 - 84
- स्त्री-पुरूष की समानता 84 - 85
- वीर शैव दर्शन में शक्ति (नारी) का महत्त्व 85 - 86
- वीर शैव दर्शन में शक्ति (नारी) की विशेषता 86 - 91
- वीर शैव दर्शन का राजनैतिक महत्त्व 91 - 94
- वीर शैव दर्शन का सांस्कृतिक महत्त्व 94 - 96
- तीर्थ-स्थलों का महत्त्व 96
- शिक्षण एवं शोध-संस्थान 97
- वीर शैव दर्शन की आर्थिक स्थिति 97
- वीर शैव दर्शन की दार्शनिक स्थिति 98
- वीर शैव दर्शन की आध्यात्मिक स्थिति 98
- सन्दर्भिका 98 - 100

❖ **उपसंहार :-** **100 – 105**

❖ **सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची :-** 106 - 115

- प्रारम्भिक स्त्रोत 106 - 110
- साक्षात् स्त्रोत 106 - 108
- असाक्षात् स्त्रोत 108 -110
- द्वितीयक स्त्रोत 110 - 115
- स्वतन्त्र ग्रन्थ 110 - 112
- शोध प्रबन्ध 112
- पत्र पत्रिकायें 112 - 113
- शब्दकोश एवं विश्वकोश 113 -114
- अन्तर्जाल 114
- साक्षात्कार 114 -115

प्रथम अध्याय

विषय की शोधार्हता, प्रविधि एवं परियोजना

प्रथम अध्याय : विषय की शोधार्हता, प्रविधि एवं परियोजना

➢ विषय क्षेत्र एवं उद्देश्य :-

शिव या रूद्र की उपासना वैदिक काल से ही इस भारत-भूमि में प्रचलित है । यजुर्वेद में शतरूद्रीय अध्याय है । तैत्तिरीय आरण्यक (१०/१६) में समस्त जगत् को रूद्ररूप बताया गया है । वेदों में उल्लिखित रूद्र ही लोक व्यवहार में शिव कहे जाते हैं । श्वेताश्वतरोपनिषद् (३/१२) में शिव सर्वानन, शिरोग्रीव, सर्वव्यापी, तथा सर्वगत माने गए हैं । भारतवर्ष में आगमशास्त्र को वेदतुल्य माना गया है । परमेश्वर शिव के मुख से निर्गत होने के कारण ये परम प्रमाण की कोटि में आता है । कहा गया है –

"आगतं शिववक्त्रेभ्यो, गतं च गिरिजायुतौ ।

तदागममिति प्रोक्तं, शास्त्रं परम पावनम् ॥"[1]

आगम का अपर अभिधान तन्त्र भी है । तन्त्र के प्रमुखतया त्रिविध विभाग है – ब्राह्मणतन्त्र, बौद्धतन्त्र तथा जैनतन्त्र । ब्राह्मणतन्त्र भी पुन: उपास्य देवताओं के भेद के कारण त्रिविध है – शैवागम, शाक्तागम तथा वैष्णवागम । इनमें भी वैष्णवागम विशिष्टाद्वैत के, शाक्तागम अद्वैत के तथा शैवागम द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत और शक्तिविशिष्टाद्वैत के प्रतिपादक हैं । वीर शैव को विशेषाद्वैत, शक्तिविशिष्टाद्वैत तथा शिवाद्वैत भी कहा गया है । शिवोक्त कामिकादि से वातुल पर्यन्त अट्ठाईस आगम वीर शैवों के मान्य हैं –

"कामिकं योगजं चिन्त्यं, कारणं त्वजितं तथा ।

विजयश्चैव निश्वासं, स्वायम्भुमथानिलम् ॥

वीरञ्च रौरवं चैव, मकुटं विमलं तथा ।

चन्द्रज्ञानं बिम्बञ्च, प्रोद्गीतं ललितं तथा ।।

सिद्धं सन्तानशर्वोक्तं, पारमेश्वरमेव च ।

किरणं वातुलं चैव, अष्टाविंशतिसंख्यया ॥"[2]

इनमें दस शैवागम तथा अवशिष्ट अष्टादश रूद्रागम हैं । इनके नाम इस प्रकार हैं –

दस शैवागम :- कामिकागम, योगजागम, चिन्त्यागम, कारणागम, अजितागम, दीप्तागम, सहस्रागम, सुप्रभागम तथा अंशुमदागम ।

अष्टादश रूद्रागम :- विजयागम, निश्वासागम, स्वायम्भुवागम, अनलागम, मारवागम, रौरवागम, मकुटागम, विमलागम, चन्द्रज्ञानागम, बिम्बागम, ललितागम, प्रोद्गीतागम, सिद्धागम, सन्तानागम, शर्वोक्तागम, पारमेश्वरागम, किरणागम तथा वातुलागम ।

इन आगमों के उत्तर भाग में निर्दिष्ट वीर शैव मत का प्रतिपादन किया गया है । कहा भी गया है –

"सिद्धान्ताख्ये महातन्त्रे, कामिकाद्ये शिवोदिते ।

निर्दिष्टमुत्तरे भागे, वीरशैवमतं परम् ॥"[3]

पारमेश्वर तन्त्र में वीर शैव की आगममूलकता प्रदर्शित की गई है । तदनुसार वीरशैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, विनायक तथा कापाल ये छ: ही दर्शनों में परिगणित हैं –

"वीरशैवं वैष्णवं च शाक्तं सौर विनायकम् ।

कापालमिति विज्ञेयं दर्शनानि षडेव हि ॥"[4]

वीर शैव का तात्पर्य निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट हो जाता है –

"वी" शब्देनोच्यते विद्या, शिवजीवैक्यबोधिका ।

तस्यां रमन्ते ये शैवा, वीरशैवास्तु ते मता: ॥"[5]

इसका अपर अभिधान लिङ्गायत भी है । दीक्षा के उत्तर[6] में जिससे लिङ्गध्यानादि सम्पन्न होता है, वह लिङ्गायत है । वीर शैव के आन्तरिक प्रभेद भी दृष्टिगोचर होते हैं – सामान्य (सामान्य-इष्टलिङ्गादिपूजक), विशिष्ट (विशिष्टलिङ्गादिपूजक), और निराभारि (नि:स्पृहवृत्यादिपूजक) । पञ्च महापुरूषों ने इस मत का भिन्न-भिन्न काल में उपदेश किया है । जिनके संक्षिप्त ज्ञान के लिए निम्नलिखित तालिका द्रष्टव्य है –

सुप्रबोधागम के अन्तर्गत पञ्चाचार्यों की उत्पत्ति गोत्रादि मालिका[7]–

शिव के पञ्चमुख	सद्योजात	वामदेव	अघोर	तत्पुरूष	ईशान
पञ्चाचार्यों के नाम	रेवणाराध्य	मरूळाराध्य	एकोरामाराध्य	पण्डिताराध्य	विश्वाराध्य
सिंहासन स्थान	रम्भापुरी	उज्जैनीपुरी	हिमवत्केदार	श्रीशैलपर्वत	वाराणसी
उनके गोत्र	वीर	नन्दी	भृङ्गी	वृषभ	स्कन्द
उनके सूत्र	षड्-विधि	वृष्टि	लम्बन	मुक्तागुच्छ	पञ्चवर्ण
उनके प्रवर	वीर शैव	वीर शैव	वीर शैव	वीर शैव	वीर शैव
शाखा	ऋग्वेद	यजुर्वेद	सामवेद	अथर्ववेद	अजपवेद
कलशों के धातु	स्वर्ण	रजत	ताम्र	लौह	सीसक
तत्त्व	पृथ्वी	अप्	तेज	वायु	आकाश

तदतिरिक्त कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य[8] :-

शिव के पञ्च प्रमुख शिवगणों के नाम - रेणुक (न), दारूक (म), घण्टाकर्ण (शि), धेनुकर्ण (वा) तथा विश्वकर्ण (य) ।

पञ्चज्योतिर्लिङ्गों के नाम – सोमनाथ, सिद्धेश्वर, मल्लिकार्जुन, केदारनाथ एवं विश्वनाथ ।

पञ्च-उपदेशक-उपदिष्ट (ग्रन्थ) – रेणुक-अगस्त्य (षडविधि-सूत्र), दारूक-दधीचि (वृष्टि-सूत्र), घण्टाकर्ण-व्यास (लम्बनसूत्र), धेनुकर्ण-सानन्द (मुक्तागुच्छ-सूत्र), विश्वकर्ण-दुर्वासा (पञ्चवर्ण-सूत्र)।

तदतिरिक्त नीलकण्ठाचार्य, शिवयोगी-शिवाचार्य, श्रीपतिराध्य, मायिदेव, स्वप्रभानन्द-शिवाचार्य, मरितोण्टदार्य, केलदीबसवभूपाल, शङ्खशास्त्री तथा वसवेश्वर भी वीर शैव के प्रमुख आचार्य हैं । इनके प्रमुख ग्रन्थों में सिद्धान्त-शिखामणि, ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, वीर शैवपुराण, शिवप्रकाशकम, लिङ्गपुराण, शिवलीलामर्त, शिवगीता, वचन साहित्य, वर्षमेन्द्रविजय, प्रभुलिङ्गलीला, पेरिय पुराण आदि प्रसिद्ध हैं । जो संस्कृत, कन्नड़, तमिल तथा हिन्दी भाषा में हैं। इसके अतिरिक्त शताधिक आचार्यों एवं ग्रन्थों की परम्परा वीर शैव मत में रही है।

प्रमुख सिद्धान्तों में वीर शैव श्रुति को परम प्रमाण मानता है। तत्पश्चात् शैवागमों का स्थान है । तदनुसार शिव विश्वोतीर्ण तथा विश्वमय दोनो है । विश्वोत्तीर्ण परब्रह्मस्वरूपशिव असीम, अनन्त, तथा रूप शरीर विहीन है और अपरब्रह्मस्वरूप शिव विश्वमय है । सभी प्राणियों में आत्माएँ होती हैं, लेकिन मनुष्य योनि ही कर्मों का पूर्ण भोग एवं मोक्ष प्राप्त करने में समर्थ है । वीर शैव स्वर्ग तथा नरक को अस्थायी मानता है । सभी वीर शैवों को शाकाहारी होना आवश्यक है। मांस, मदिरा तथा परस्त्रीगमन निषेध है। प्रमुख परम्पराओं में ज्योतिष, आयुर्वेद, आरती, भजन, दर्शन, दीक्षा, मन्त्र, पूजा, सत्संग, स्तोत्र, विवाह, लिङ्गधारण तथा जङ्गमदान आदि प्रमुख हैं। वैदिक रीतियों से वीर शैवों के अन्तर्गर्भ तथा बहिर्गर्भ संस्कार भी होते हैं। इनमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों की यात्रा की अत्यधिक प्रसिद्धि है। इनकी साधना पद्धति में षड्स्थल (भक्त, महेश, प्राण, लिङ्ग, ऐक्य तथा शरण), पञ्चाचार (भर्त्याचार, लिङ्गाचार, सदाचार, गणचार तथा शिवाचार), पञ्चयज्ञ (तप, कर्म, जप, ध्यान तथा ज्ञान), एवं अष्टावर्ण (गुरू, लिङ्ग (इष्ट, चर, और स्थावर), जङ्गम, पादोदक, प्रसाद, विभूति, रूद्राक्ष तथा मन्त्र) प्रसिद्ध हैं।

सिद्धान्तशिखामणि :- प्रस्तुत ग्रन्थ में ईश्वर का स्वरूप, जीवात्म-स्वरूप, सृष्टिमीमांसा, बन्ध, मोक्ष आदि का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। वीर शैवों का परम्परा आधारित यह प्रमुख ग्रन्थ है। यह शिवयोगी शिवाचार्य कृत प्रस्थान त्रय का ग्रन्थ है। ध्यातव्य है कि शैवागमों के अतिरिक्त वीर शैव के मान्य ग्रन्थ प्रस्थान त्रय के अन्तर्गत माने जाते हैं।

ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य :- ब्रह्मसूत्र भारतीय सिद्धान्तों के अवबोध के लिए तार्किक प्रणाली की अनुपम प्रस्तुति है । अत: जिस सम्प्रदाय को अपने सिद्धान्त को विद्वतापूर्वक प्रस्तुत करना पड़ा, उस सम्प्रदाय को ब्रह्मसूत्र के (स्वमत के अनुसार) भाष्य की रचना करनी पड़ी। जिसने भी ब्रह्मसूत्र पर भाष्य की रचना की वह स्वमत को विद्वत समाज की तार्किक प्रणाली द्वारा सिद्ध कर पाया । वीर शैव मतानुसार ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य भी इसी सैद्धान्तिक प्रक्रिया में श्रीपतिपण्डितभगवत्पादाचार्य कृत प्रस्थान त्रय का ग्रन्थ है । प्रस्थान त्रय का तात्पर्य है कि वीर शैव इसे कम से कम तीन पीढ़ी तक स्मरण करते हैं । इस भाष्य में वीर शैव मतों की उपनिषन्मूलकता प्रदर्शित की गई है। यह तार्किक दृष्टि से वीर शैवों का प्रमुख ग्रन्थ है।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य इन दोनो ग्रन्थों की प्रमुखता के साथ ही वीर शैव दर्शन के अन्य ग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में तत्त्वमीमांसा के स्वरूप अन्वेषण करना है । इस तत्त्वमीमांसीय शोध से करोड़ों वीर शैवानुयायियों के लिए स्वधर्म के विषय में एक युक्तिपूर्ण नई चिन्तन परम्परा का प्रादुर्भाव होगा।

➢ विषय चयन का औचित्य (Justification of topic) :-

भारतीय दर्शन केवल बौद्धिक विलास की वस्तु नही है , अपितु यह व्यवहारिक भी है । शैव दर्शन में वीर शैव दर्शन भी धर्म स्वरूप प्रतिष्ठित है । उल्लेखनीय है कि शोधार्थी को परास्नातक तृतीय सत्र में "शैव शाक्त एवं तन्त्र' के पाठ्यक्रम में विशेष रूचि जागृत हुई थी । पुन: चतुर्थ सत्र में "वेदान्त एवं प्रत्यभिज्ञा' के पाठ्यक्रम को जानने का सुअवसर प्राप्त हुआ । विशेषत: वेदान्त दर्शन एवं शैव दर्शन में कुछ समानताएँ तथा विषमताएँ दृष्टिगोचर हुईं । दोनो का समन्वय उसे वीर शैव में प्राप्त हुआ । सिद्धान्त शिखामणि वीर शैव दर्शन का परम्परा आधारित प्रमुख ग्रन्थ है, जबकि ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य वीर शैव दर्शन का तार्किक दृष्टि से प्रमुख ग्रन्थ है। दोनों ग्रन्थों की तत्त्वमीमांसा में प्रमुखतया छत्तीस तत्त्वों में से शिव, शक्ति की ही परिचर्चा है, तो छत्तीस तत्त्व मानने का औचित्य क्या है ? सम्पूर्ण तत्त्वों की परिभाषा क्या है ? इत्यादि प्रश्नों ने शोध-जिज्ञासा को और प्रबल कर दिया । प्रस्तुत शोध के माध्यम से वीर शैव के अनुयायियों को एक नई दिशा प्राप्त होगी ।

➢ प्रस्तुत क्षेत्र में विद्यमान पूर्ववर्ती शोध कार्य

(Existing research in this area) :–

प्रस्तुत शोध प्रस्ताव से सम्बन्धित साक्षात् कोई सामग्री प्राप्त नही हुई है, जैसा शोधार्थी को अभीष्ट है –

- **The Veersaiva :- W.E. Tomlinson , Banglore , first edition 1938 :-**

अंग्रेजी भाषा में प्रस्तुत इस ग्रन्थ में वीर शैव की पृष्ठभूमि को महत्त्वपूर्ण ढंग से व्याख्यायित किया गया है । तदनुसार उसकी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा दार्शनिक तथ्यों का समुचित मूल्याङ्कन किया गया है किन्तु प्रमुखतया वीर शैव मत में स्वीकृत छत्तीस तत्त्वों के स्वरूप के वर्णन का अभाव है ।

- **Virshaiva Concept of Shakti (Ph. D. Thesis) :- N. G. Mahadevappa , University of Mysore ,1978 :-**

अंग्रेजी भाषापरक प्रस्तुत ग्रन्थ में वीर शैव मत में स्वीकृत छत्तीस तत्त्वों में शक्ति की श्रेष्ठता प्रदर्शित की गयी है । तदनुसार शिव बिना शक्ति के शव ही है । वह शिव की स्वभाविकी

शक्ति है जो उसके साथ नित्य है, भले ही वह विश्वोतीर्ण अवस्था हो या फिर विश्वमय अवस्था। यहाँ भी शक्ति का स्वरूप ही प्रमुखतया प्रदर्शित किया गया है।

- **Satsthal in Virshaivism, A Philosophical Study (Ph. D. Thesis) :- (V.S. Kambi), Karnataka University, 1975 .**

प्रस्तुत ग्रन्थ में वीर शैव की आचारमीमांसा के अन्तर्गत षट्स्थल का समुचित निरूपण किया गया है। हाँ तत्त्वमीमांसीय दृष्टि से दार्शनिक अध्ययन होने के कारण वीर शैव मत में स्वीकृत छत्तीस तत्त्वों के संक्षिप्त स्वरूप का वर्णन किया गया है किन्तु यहाँ भी वीर शैव मत में स्वीकृत छत्तीस तत्त्वों के स्वरूप की परिचर्चा का अभाव ही अवलोकित होता है।

- ***शक्तिविशिष्टाद्वैततत्त्वत्रयविमर्श: (डी० लिट्० थिसिस)*** :- डा० चन्द्रशेखर शिवाचार्य, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण १९९६ ई० –

प्रस्तुत ग्रन्थ में वीर शैव के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है । प्रमुखतया आचारमीमांसापरक दृष्टि ही प्रस्तुत ग्रन्थ में अवलोकित होती है । गुरू, षड्स्थल इत्यादि सिद्धान्तों के स्वरूप पर विशेष ध्यान दिया गया है लेकिन वीर शैव मत में स्वीकृत छत्तीस तत्त्वों के स्वरूप की परिचर्चा का अभाव है ।

- ***सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा (पी० एच० डी० थिसिस)*** :- डा० चन्द्रशेखर शिवाचार्य, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण १९८९ ई० –

प्रस्तुत ग्रन्थ में सिद्धान्तशिखामणि के प्रमुख सिद्धान्तों की समीक्षा की गई है । अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों का खण्डन करते हुए वीर शैव मत की स्थापना की गई है, साथ ही सृष्टि-विचार, जीव का स्वरूप, मोक्ष-बन्धन के सिद्धान्तों की विवेचना की गई है। वीर शैव के प्रमुख सिद्धान्तों जैसे पञ्चाचार, षड्स्थल, पञ्चयज्ञ एवं अष्टावरण आदि की विस्तृत चर्चा की गयी है। संक्षिप्त रूप में वीर शैव मत में स्वीकृत छत्तीस त्तत्वों की विवेचना भी की गयी है।

- **पूर्ववर्ती शोध कार्यों से प्रस्तुत शोध कार्य की विशिष्टता (In What way is this research is going to be different from exiting work in this area) :-**

प्रस्तुत शोध-प्रस्ताव पर निश्चित रूप से कोई कार्य नही हुआ है । गोपीनाथ कविराज ने **"Some Aspects of Virshaiva Philosphy"** नामधेय निबंध में वीर शैव मत में स्वीकृत तत्त्वों की परिचर्चा की है, लेकिन उसमें भी शोधार्थी को अभीष्ट छत्तीस तत्त्वों के स्वरूप तथा विवेचन का अभाव है ।

- **शोध शीर्षक की सार्थकता (Declaration of the Research Topic):-**

"मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चित यतति सिद्धये ।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेति तत्त्वत: ॥[9]"

श्रीमद्भगवद्गीता के उपर्युक्त श्लोकानुसार किसी भी ज्ञान को तत्त्वत: जानना आवश्यक होता है । फलत: ज्ञान की त्रिविध धाराओं में तत्त्वमीमांसा का प्रथमतया स्थान परिगणित होता है । प्रत्येक दर्शन के तत्त्वों का ज्ञान तथा उनके स्वरूप की मीमांसा के अभाव में उस दर्शन का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त नही हो सकता, जिससे उस दर्शन के उद्देश्य में अवरोध उत्पन्न होता है । उचित तो यही होगा कि प्रत्येक दर्शन के ही न केवल तत्त्वों का अपितु उनके शाखाभेद में मान्य तत्त्वों की भी मीमांसा हो, जिससे उस दर्शन की व्यवहारिकता भी स्थित रहे तथा वह आध्यात्मिक प्रोन्नति की ओर भी अग्रसर हों ।

प्रस्तुत शोध-प्रस्ताव का शीर्षक है – "वीर शैव दर्शन में तत्त्वमीमांसा का स्वरूप ।"

वीर :- इस दर्शन के वीर नामकरण के विषय में कहा गया है-

"वी" शब्देनोच्यते विद्या शिवजीवैक्यबोधिका ।

तस्यां रमन्ते ये शैवा वीरशैवास्तु ते मता : ॥"[10]

तदनुसार **'वी'** शब्द शिव एवं जीव की एकात्मिका विद्या का बोधक है, तथा उस विद्या में जो रमण करते है, वे वीर कहलाते हैं ।

शैव दर्शन :- शिव को परमतत्त्व के रूप में स्वीकार करनेवाले शैव कहलाते है । दर्शन का सामान्य अर्थ देखना होता है किन्तु इस अवलोकन की प्रक्रिया में बाह्य और अन्तर द्विविध पक्ष उपस्थित होते हैं, जो उसकी स्थूलता तथा सूक्ष्मता दोनो को प्रश्रय देते हैं । दृष्टिभेद के कारण ही भिन्न-भिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों का उद्भव होता है । कुछ सम्प्रदाय उसकी स्थूलता

को प्राथमिकता देते हैं, तो कुछ सूक्ष्मता को । इस प्रकार दर्शन स्थूल से सूक्ष्म पर्यन्त सम्पूर्ण ज्ञान की चिन्तन सरणि है ।

तत्त्व :- वीर शैव मतानुसार तत्त्व शब्द का तात्पर्य है –

"तत्त्वं नाम अनारोपितं रूपम्, प्रमितिविषयत्त्वं वा ।"[11]

अर्थात् जिस सत्ता पर किसी रूप का आरोपण न हुआ हो या फिर जो प्रमिति (प्रमा) का विषय हो, वह तत्त्व कहा जाता है । जो निष्कल है (कला से अपरामृष्ट) है, वह भी तत्त्व कहा गया है-

"निष्कलं तत्त्वमित्युक्तं सकलं मूर्तिरूच्यते ॥"[12]

तत् शब्द नपुंसकलिङ्ग है तथा यह निश्चयवाचक सर्वनाम है । यही निश्चयरूप भावात्मकता इसको तत्त्व शब्द से अलङ्कृत करती है । न्यायमञ्जरी में भी तत्त्वज्ञान की व्याख्या करते हुए जयन्त भट्ट तत्त्व शब्द की परिभाषा देते हुए कहते है – **"सतोऽसतो वा वस्तुनः प्रमाणपरिनिश्चितस्वरूपं शब्दप्रवृत्तिनिमित्तं तदुच्यते । तस्य भावस्तत्त्वमिति । तच्च ज्ञानेन निश्चीयते ।"**[13] अर्थात् तद् वह है जो सत् या असत् वस्तु के प्रमाण से सुनिश्चित स्वरूप वाला तथा शब्द की प्रवृत्ति का निमित्त है और उसका निश्चय ज्ञान से होता है । तत्त्व की अन्य परिभाषा भी इसी तथ्य को सिद्ध करती है **"सदसति तत् तस्य भावः तत्त्वम् । तदस्ति तन्नास्तीति निश्चयभावं तत्त्वम् ।"**[14] अर्थात् वह है, वह नही है इसको तत् कहते है और वह निश्चयता का भाव का तत्त्व कहलाता है ।

मीमांसा :- मीमांसा शब्द की व्युत्पत्ति मान् धातु से जिज्ञासा अर्थ में सन् प्रत्यय करके की जाती है । अतः व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ से जिज्ञासा ही मीमांसा शब्द का वाचक होगा । इस प्रकार मीमांसा का अर्थ है पूजित विचार ।[15] तैत्तिरीय संहिता, काठक संहिता, मैत्रायणीय संहिता एवं कौषितकी ब्राह्मण में मीमांसा पद का प्रयोग विचार-विमर्श को अभिव्यक्त करने के लिए मिलता है – **"इति मीमांसन्ते ब्रह्मवादिनः" (तैत्तिरीय संहिता सं० ५/७/१), "उत्सृज्यां नोत्सृज्यामिति मीमांसन्ते" (काठक सं० ३/३/७) एवं "इति मीमांसन्ते" (मैत्रायणीय सं० १/८/५)**[16] इत्यादि । इस प्रकार जो तत्त्वात्मक विचार मान्य या पूजित होते है, उनको तत्त्वमीमांसा पद से अभिहित किया जाता है । तत्त्वमीमांसा सम्पूर्ण ज्ञान का प्रथम सोपान है ।

स्वरूप :- स्वरूप से उसकी वास्तविक स्थिति ज्ञात की जा सकता है । जो चक्षु इन्द्रिय से ग्राह्य हो सके वह रूप कहा जाता है **("चक्षुमात्रग्राह्यो गुणो रूपम्"**[17]**)** किन्तु उसका स्वरूप तदभिन्न है । जो बाह्य वस्तु चक्षु इन्द्रिय से दृष्टिगोचर हो रही होती है, वह उसका रूप है लेकिन उसकी सूक्ष्मता अर्थात् जहाँ वह अखण्डित अवस्था में हो वह उसका वास्तविक स्वरूप है । स्व का तात्पर्य आत्मिक है और रूप का तात्पर्य भौतिक है । इस प्रकार वीर शैव

मत में स्वीकृत छत्तीस तत्त्वों की मीमांसा पूर्वक उसके स्वरूप को उद्घाटित करना ही प्रस्तुत शोध शीर्षक का तात्पर्य है ।

➢ शोध प्रबन्ध हेतु उपयोगी प्रमुख स्रोत

(Primary sourse material proposed to be used for this study) :-

- ***सिद्धान्तशिखामणि*** :- शिवयोगिशिवाचार्य, (हिन्दीव्याख्याकार) प्रो० डॉ० राधेश्याम चतुर्वेदी, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, २००६ ई० ।
- ***ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य (भाग १-२)*** :- श्रीपतिपण्डितभगवत्पादाचार्य, ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट्, मैसूर, कर्णाटक, प्रथम संस्करण, १९७७ ई० ।
- ***ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य(भाग १-३)*** :- श्रीपतिपण्डितभगवत्पादाचार्य, (सं०) सी० हयवदना राव, अक्षय प्रकाशन, नई दिल्ली, पुन: प्रकाशित २००३ ई० ।
- ***अनुभवसूत्र*** :- मायिदेव, (सम्पादक) गजाननशास्त्रिमुसलगाँवकर, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९८ ई० ।
- ***ईशावास्योपनिषद् (वीरशैवभाष्यसहित)*** :- (अनुवादक एवं सम्पादक) जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९६ ई० ।
- ***केनोपनिषद् (वीरशैवभाष्यसहित)*** :- (अनुवादक एवं सम्पादक) जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९६ ई० ।
- ***कैवल्योपनिषद् (सदाशिवभाष्यसहित)*** :- सदाशिवशिवाचार्य, (अनुवादक एवं सम्पादक) जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, २००६ ई० ।
- ***पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्यम्*** :- सिद्धनञ्जेश शिवाचार्य, (अनुवादक एवं सम्पादक) व्रजवल्लभ द्विवेदी, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान ,जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, २००४ ई० ।
- ***महानयप्रकाश:-*** (सम्पादक) आचार्य कृष्णानन्द सागर, श्रीशिवोऽहं सागर ग्रन्थमाला प्रकाशन, प्रथम संस्करण १९८५ ई०।
- ***रूद्राध्याय*** :- आनन्दसंस्कृताग्रन्थावलि, १९९७ ई० ।

- ***श्वेताश्वेतरोपनिषद् (वीरशैवभाष्यसहित)*** :- (भावार्थदीपिकाकार एवं सम्पादक) जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, २००६ ई० ।
- ***शिवाद्वैतदर्पण*** :- भगवत्पादशिवानुभव शिवाचार्य, (सम्पादक) वे० ब्र० श्री० सिद्धान्तसिद्धबसवशास्त्रि, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९९ ई० ।
- ***शिवपञ्चविंशतिलीलाशतकम्*** :- वीरभद्रशर्मा, (सम्पादक) व्रजवल्लभ द्विवेदी, (लीलासंग्राहक) डॉ० ददन उपाध्याय, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, २००६ ई० ।
- ***शिवरहस्य*** :- (सम्पादक) वे० स्वामिनाथ आत्रेय, तञ्जुपुरी सरस्वती महालय-ग्रन्थमाला संख्या-१३५ ।
- ***सिद्धान्तसारावलि*** :- त्रिलोचन शिवाचार्य, (अन्वयार्थकार) मरूलसिद्धशिवाचार्य, (विस्तरार्थकार एवं सम्पादक) व्रजवल्लभ द्विवेदी, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९८ ई० ।
- ***सिद्धान्तप्रकाशिका*** :- सर्वात्मशम्भु, (सम्पादक) जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९६ ई० ।
- ***सिद्धान्तशिखोपनिषद्*** :- उमचिगिशङ्करशास्त्रिविरचित, (अनुवादक एवं सम्पादक) जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान ,जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९८ ई० ।

<u>आगम</u>

- ***कारणागम (क्रियापाद)*** :- (सम्पादक) प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९४ ई० ।
- ***कामिकागम*** :- श्री चे. स्वामिनाथाचार्य, दक्षिणभारतार्चक सङ्घ, तम्बुच्चेटी वीथी, मद्रास, १९७५ ई० ।
- ***चन्द्रज्ञानागम (क्रिया एवं चर्यापाद)*** :- (सम्पादक) व्रजवल्लभ द्विवेदी, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९४ ई० ।

- ***देवीकालोत्तरागम*** :- (अनुवादक एवं सम्पादक) व्रजवल्लभ द्विवेदी, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, २००० ई० ।
- ***पारमेश्वरागम*** :- (सम्पादक) व्रजवल्लभ द्विवेदी, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९५ ई० ।
- ***मकुटागम (क्रियापाद एवं चर्यापाद) :-*** (सम्पादक) व्रजवल्लभ द्विवेदी, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण १९९४ ई० ।
- ***मृगेन्द्रागम :-*** एन. आर. भट्ट, इन्स्टीट्यूट् फ्रेन्सिस इन्डोलोजी, पुदुच्चेरी, १९६२ ई० ।
- ***सूक्ष्मागम (क्रियापाद)*** :- (सम्पादक) व्रजवल्लभ द्विवेदी, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९४ ई० ।

➢ शोध-प्रविधि (Approach/Method/Technique) :-

प्रस्तुत शोध प्रविधि तुलनात्मक प्रस्तुति के साथ-साथ विवेचनात्मक होगी, जिसमें वीर शैव परम्परा के छत्तीस तत्त्वों के स्वरूप का युक्तिपूर्ण अन्वेषण किया जाएगा । एतदर्थ प्रथमत: इसका विभाजन अध्यायों में किया जाएगा, पुन: अध्यायों का विभाजन बिन्दुओं एवं उपबिन्दुओं में किया जाएगा एवं प्रत्येक बिन्दुओं तथा उपबिन्दुओं का विवेचन भी अपेक्षित रहेगा, इस दृष्टि से यह पद्धति विवेचनात्मक होगी । प्रत्येक बिन्दुओं तथा उपबिन्दुओं की यथासंभव तुलना भी की जाएगी । इस दृष्टि से यह पद्धति तुलनात्मक होगी । एतदर्थ सिद्धान्त शिखामणि एवं ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य का विधिवत् अध्ययन अपेक्षित रहेगा । साथ ही कामिकागम, मृगेन्द्रागम, सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा, सिद्धान्तसारावलि, सिद्धान्तप्रकाशिका, सिद्धान्तशिखोपनिषद् , शिवरहस्य, तथा महानयप्रकाश आदि ग्रन्थों का भी अध्ययन इस दृष्टि से अपेक्षित रहेगा । इस शोध कार्य के लिए आधुनिक वीर शैव दर्शन के मान्य आचार्यों का साक्षात्कार भी इस शोध-प्रबन्ध की पृष्ठभूमि के लिए महत्त्वपूर्ण होगा, जिनमें डॉ०चन्द्रशेखर शिवाचार्य (श्री काशी जगद्गुरू) तथा डॉ०सिद्धराम शिवाचार्य (श्रीशैल जगद्गुरू) आदि प्रमुख हैं । एतदर्थ निम्नलिखित पुस्तकालयों का गमन भी अपेक्षित रहेगा :-

विशिष्टसंस्कृताध्ययनकेन्द्र पुस्तकालय, जे० एन० यू०, नई दिल्ली । केन्द्रीय पुस्तकालय, जे०एन० यू०, नई दिल्ली । श्रीलालबहादुरशास्त्री विद्यापीठ पुस्तकालय, नई दिल्ली । राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान पुस्तकालय, नई दिल्ली । इन्दिरा गांधी कला केन्द्र पुस्तकालय, नई

दिल्ली । दिल्ली विश्विद्यालय पुस्तकालय, दिल्ली । बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय पुस्तकालय, वाराणसी । संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय पुस्तकालय, वाराणसी । कामेश्वर सिंह दरभङ्गा संस्कृत विश्वविद्यालय, पुस्तकालय, दरभङ्गा, बिहार । पटना विश्वविद्यालय पुस्तकालय, पटना, बिहार । कश्मीर विश्वविद्यालय पुस्तकालय, श्रीनगर (काश्मीर) । देव संस्कृति विश्वविद्यालय पुस्तकालय, हरिद्वार (उत्तरांचल) । काशी हिन्दू विद्यापीठ पुस्तकालय, वाराणसी । जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी पुस्तकालय, वाराणसी, इत्यादि ।

➢ **प्रस्तावित अध्याय विभाजन (Proposed chapter divison) :-**

- **आत्म-निवेदन ।**
- **प्राक्कथन ।**
- **विषय – सूची ।**
- **प्रथम अध्याय – विषय की शोधार्हता, प्रविधि, एवं परियोजना ।**
- **द्वितीय अध्याय – वीर शैव दर्शन की परम्परा ।**
- **तृतीय अध्याय – वीर शैव दर्शन की तत्त्वमीमांसा ।**
- **चतुर्थ अध्याय – वीर शैव दर्शन की वर्तमान समय में प्रासङ्गिकता ।**
- **उपसंहार ।**
- **सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची ।**

सन्दर्भिका:-

---

1 भास्करी, पृष्ठ ८४ ।

2 क्रियासार, भाग १, पृष्ठ ८५ ।

3 सिद्धान्तशिखामणि, ५/१४, पृष्ठ ६० ।

4 पारमेश्वर तन्त्र, १/२२-२३ ।

5 सिद्धान्तशिखामणि, ५/१६, पृष्ठ ६१ ।

6 उत्तर: काल: इत्यमर: ।

7 वीरशैवसदाचारसंग्रह (पञ्चाचार्योत्पत्तिवर्णन), ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य पृष्ठ २३ ।

8 सिद्धान्तशिखामणि, प्रस्तावना, पृष्ठ ३ ।

9 श्रीमद्भगवद्गीता ७/४ ।

10 सिद्धान्तशिखामणि, ५/१६ ।

11 सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा, पृष्ठ ३४९ ।

12 वातुलशुद्धाख्यतन्त्र, १/४० ।

13 न्यायमञ्जरी, पृष्ठ संख्या २४ ।

14 षड्-दर्शन रहस्य, पृष्ठ ८७ ।

[15] अर्थसंग्रह, भूमिका, पृष्ठ १ ।

[16] वही, पृष्ठ १ ।

[17] तर्कसंग्रह, पृष्ठ ५९ ।

द्वितीय अध्याय

वीर शैव दर्शन की परम्परा

द्वितीय अध्याय : वीर शैव दर्शन की परम्परा

यह सृष्टि कितनी प्राचीन है, यह यथार्थ रूप से कहा नही जा सकता क्योंकि जो भी साक्ष्य इसकी प्राचीनता या नवीनता के तथ्य को पुष्ट करते हैं, वें मानव निर्मित हैं। जिन वैज्ञानिक साक्ष्यों को हम पूर्णत: प्रमाणिक मानतें हैं, वें भी कालान्तर में खण्डित हो जाते हैं। फलत: हमें कुछ ऐसी भी सत्ता का अस्तित्व स्वीकार करना पड़ता है, जो न केवल हमारी इन्द्रियों के परे है अपितु हमारी बुद्धि भी वहाँ तक नही जा सकती है। जिन ऐतिहासिक मृत्भाण्ड-इत्यादि को हम समय का आधार मानकर तदनुसार काल का विभाजन करते हैं, उनमें भी सत्यता का ह्रास ही अवलोकित होता है क्योंकि तत्पूर्व की सामग्री हमारे पास उपलब्ध नही है और जो उपलब्ध नही है उसका अस्तित्व नही रहा होगा यह कहा नही जा सकता है। इतिहास का कालक्रम स्थानीय होता है, जबकि साहित्य सार्वभौमिक होता है, जिसका आधार सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। दु:ख का विषय है कि हमारे यहाँ आज भी साहित्यिक प्रमाणों की उपेक्षा हो रही है। सम्प्रति उपलब्ध साहित्य में ऋग्वेद को प्राचीनतम माना जाता है।

• वेद एवं आगम

भारतवर्ष विविधताओं का राष्ट्र है। यहाँ अनेकता में अद्भुत एकता दृष्टिगोचर होती है, जो भौगोलिक परिदृश्य में कश्मीर से कन्याकुमारी तक व्याप्त है। इस भारतीय परम्परा में सनातन धर्म सर्वप्राचीन माना जाता है क्योंकि उसका आदिस्त्रोत वेद है। वेद केवल भारतीय सभ्यता ही नही अपितु विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ माने जाते हैं। वें भारतीय दर्शन तथा संस्कृति के प्राण कहे जाते हैं। इनको प्रमाण स्वरूप उद्धृत करनेवाले आस्तिक तथा अप्रमाण्यस्वरूप मानने वाले नास्तिक सम्प्रदाय की कोटि में आते हैं। श्रुति भी द्विविध ज्ञानधाराओं का प्रतिनिधित्व करती है -

"वैदिकी तान्त्रिकी चैव श्रुति : ।"[1]

हाँलांकि सिद्धान्तप्रकाशिकाकार के अनुसार शास्त्रपञ्चविध है – लौकिक, वैदिक, आध्यात्मिक, अतिमार्गिक तथा मान्त्रिक। जिनमें लौकिक शास्त्र आयुर्वेद, दण्डनीति इत्यादि दृष्ट फल के प्रतिपादक, वैदिक शास्त्र वेदों के क्रियाभागानुसार दृष्टादृष्टफल के प्रतिपादक, आध्यात्मिक शास्त्र आत्मज्ञानफल के प्रतिपादक, अतिमार्ग शास्त्र रूद्रप्रणीत पाशुपतकापालमहाव्रत के प्रतिपादक तथा मान्त्रिक शास्त्र शिव प्रणीत सिद्धान्तशास्त्र के प्रतिपादक हैं।[2]

जङ्गम शास्त्री तैलङ्ग के अनुसार ज्ञानधारा चतुर्विध है-

१. वैदिक २. तान्त्रिक ३ . वैदिक-तान्त्रिक तथा ४. तान्त्रिक वैदिक । यह विविधता वेदों और आगमों की प्रधानता तथा अप्रधानता के कारण ही है । उनमें से जो वेदसम्मत कर्मानुष्ठान को प्राथमिकता देता है वह वैदिक, जो आगमसम्मत कर्मानुष्ठान को प्राथमिकता देता है वह तान्त्रिक तथा जो वैदिक कर्मानुष्ठान को प्रधान मानकर आगमिक प्रक्रिया को गौण मानता है वह वैदिक-तान्त्रिक एवं आगमिक प्रक्रिया को प्रधान मानकर वैदिक प्रक्रिया को गौण माननेवाला तान्त्रिक-वैदिक मत है । अन्तिम तान्त्रिक-वैदिक मत शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन है, जो द्विविध है – पाशुपत (अलिङ्गी) तथा वीर शैव दर्शन (लिङ्गी)[3] ।

डॉ० रजनीश मिश्र के अनुसार आगम उपदिष्ट ज्ञान है तथा निगम दृष्ट ज्ञान है –

"Agma and Nigama are the two major sources of Indian culture (culture as mantifact) Nigama (populary known as Veda) is dristajnana (seen or realized knowledge) whereas agama is updista knowledge expounded by none other than Shiva and Parvati .[4]"

वीर शैव को वेदांश भी कह सकते है तथा वेदानुसारी तन्त्र क्योंकि इनका वैदिक विचारों से कही भी मतभेद नही है । वेद को आगम भी कहा गया है । वेदागम तथा निगमागम शब्द पर्यायवाची हैं ।[5] वेद और आगम ओंकाररूप परमशिव के निश्वास है । तदनुसार विधाता ने परमशिव द्वारा प्रदत पञ्चाक्षर मन्त्र से ही वेदागम को प्राप्त किया –

"पुरा लीना: सृष्टिकालाच्छिवस्य, पञ्चाक्षरे मन्त्रवर्ये समस्ता: ।

भूतानि पञ्च वेदा आगमाश्च, शिवाल्लब्धोऽभून्मन्त्रवर्यो विधात्रा ॥"[6]

वीर शैव मत में वेदों को उत्पन्न माना गया है-

"सद्योजातेन ऋग्वेदं, वामदेवेन यजुषम् ।

अघोरेण तथा साम, पुरूषेण त्वथर्वणम् ॥

ईशानेन मुखेनैव, कामिकाद्यागमांस्तथा ।

जनयामास विश्वेश:, सर्वसिद्धिप्रदायक: ॥"[7]

सिद्धान्तशिरोमणि में वेद को सर्वश्रेष्ठ प्रमाण स्वीकार किया गया है-

"वेदं प्रधानं सर्वेषां सांख्यादीनां महामुने: ।
वेदानुसरणदेषां प्रामाण्यमिति निश्चितम् ॥"[8]

सम्पूर्ण शैव वाङ्मय वेदमय माना जाता है-

"वेदैकदेशवर्तित्वं शैवं वेदमयं मतम् ।"[9]

एक ही कर्त्ता होने से तथा सम्पूर्ण वेदमूल होने से कामिकादि – वातुल पर्यन्त शैवागम वेद के सदृश ही प्रमाण हैं तथा सम्पूर्ण शैवागम वैदिक ही है । शिव की विमर्श शक्ति भी निगमागम रूपा है-

"विमर्शरूपिणी शक्ति: शिवस्य परमात्मन: ।

निगमागमरूपा स्यात् सर्वतत्त्वप्रकाशिनी ॥"[10]

प्रपञ्चसारतन्त्र में आगम के महत्व को प्रदर्शित किया गया है-

"श्रुत्यक्तस्तुकृते धर्मस्त्रेतायां स्मृतिसम्भव: ।
द्वापरे तु पुराणोक्त:, कलावागमसम्भव: ॥"[11]

आगमों के परिपालन से कलियुग में प्राणियों के अभ्युदय नि:श्रेयसादि की सिद्धि सरल, सद्य: तथा फलदायिनी होती है । शारदातिलक तथा महर्षि हारीत के वचनानुसार भी आगम पञ्चम वेद ही हैं- **"आगमो पञ्चमो वेद: कौलस्तु पञ्चमाश्रम: ।"[12]** त्रिपुरारहस्य में तो वेद को भी आगम का ही अंश माना गया है- **"वेदोह्यागमभाग: ।"[13]** शिवपुराण में द्विविध आगमों का वर्णन है – **"श्रौत एवं स्वतन्त्र"** । इनमें स्वतन्त्र आगम दशधा तथा अष्टादशधा विभक्त है और श्रौत आगम शत कोटि है, जहाँ पाशुपत व्रत वर्णित है ।[14] ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य के अनुसार सांख्य, योग, पाञ्चरात्र, वेद तथा पाशुपत ये मानभूत (प्रतिष्ठा के विषय) हैं, इनका खण्डन किसी प्रकार भी नही करना चाहिए ।[15]

आगम श्रुतिसम्मत ही है, भले वह वेदांश हो या वेदानुसारी तंत्र । दु:ख का विषय यह है कि आधुनिक समाज आगमों की विशुद्ध वैदिक साधनापद्धति को भूलकर प्राय: आसुरी तन्त्र का ही चयन करते हैं, फलत: सात्विक भावों को धारण करने वाले भक्त तथा साधक भी अनुचित आचरण करने लगते हैं ।

- **आगम**

आगम की व्युत्पत्ति निम्नलिखित है – **"आप्तवचनादाविर्भूतमर्थविशेषसंवेदनमागमः ।[16]"** अर्थात् सत्पुरूष की वाणी से आविर्भूत होकर अर्थ विशेष का अनुभव कराने के कारण इनका अभिधान आगम है ।

आगम की प्रचलित परिभाषा उसको उपदिष्ट सिद्ध करती है –

"आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजा युतौ ।

तदागममिति प्रोक्तं शास्त्रं परम पावनम् ॥[17]"

वाचस्पति मिश्र के अनुसार **"आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्माद् अभ्युदयनिःश्रेयसोपायाः स आगमः।"[18]** आगम का यौगिकार्थ है – **"आ समन्ताद् अर्थं गमयतीति आगमः ।"[19]** अर्थात् जो विषयों का दिग्दर्शन कराए वह आगम है । आगम का अपर अभिधान तन्त्र है **"तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन ।[20]"** इस व्युत्पत्ति पूर्वक विद्वान् तन्त्र शब्द का अर्थ प्रतिपादन करते हैं । कामिकागम में कहा गया है कि जो तन्त्र मन्त्र से समन्वित अर्थों का विस्तार करता है, पुनः उस विशालता से हमारी रक्षा करता है, वह तन्त्र है ।[21] प्रत्येक आगम के चार पाद होते हैं- (१) क्रियापाद (२) चर्यापाद (३) योगपाद तथा (४) ज्ञानपाद ।[22] बौद्ध तन्त्रों में ज्ञानपद के स्थान पर अनुत्तर पद का प्रयोग होता है ।[23]

- **आगमों के भेद एवं सम्प्रदाय**

शिव प्रोक्त कामकादि से वातुल पर्यन्त अट्ठाइस आगम शैवागम कहे जाते हैं । जिनमें प्रथम दस शैवागम तथा अवशिष्ट अष्टादश रूद्रागम हैं । इनके नाम इस प्रकार हैं –

दस शैवागम :- कामिकागम, योगजागम, चिन्त्यागम, कारणागम, अजितागम, दीप्तागम, सहस्रागम, सुप्रभागम तथा अंशुमदागम ।

अष्टादश रूद्रागम :- विजयागम, निश्वासागम, स्वायम्भुवागम, अनलागम, मारवागम, रौरवागम, मकुटागम, विमलागम, चन्द्रज्ञानागम, बिम्बागम, ललितागम, प्रोद्गीतागम, सिद्धागम, सन्तानागम, सर्वोक्तागम, पारमेश्वरागम, किरणागम तथा वातुलागम ।[24]

आगमों के संक्षिप्त ज्ञान के लिए निम्नलिखित द्विविध तालिका द्रष्टव्य है, जो गोपीनाथ कविराज के **"तन्त्र एवं आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन"** नामक ग्रन्थ पर आधारित है, जिनमें शैवागम तीन बार ग्रथित हैं तथा रूद्रागम केवल दो बार ही ग्रथित हैं[25]-

दस शैवागम

क्रम संख्या	आगमों के नाम	क्रमश: प्राप्तकर्ता	श्लोक-परिमाण
१	कामिकागम (कामजागम (अभेदात्मक))	परमेश्वर-प्रणवशिव-त्रिकल-हर।	परार्द्ध परिमाण
२	योगजागम (पञ्चभेदात्मक)	परमेश्वर-सुधा-भस्म-प्रभु।	एक लाख
३	चिन्तागम (षड्-भेदात्मक)	परमेश्वर-दीप्त-गोपति-अम्बिका।	एक लाख
४	कारणागम (सप्तभेदात्मक)	परमेश्वर-कारण-शर्व-प्रजापति।	एक करोड़
५	अजितागम (चतुर्भेदात्मक)	परमेश्वर-सुशिव-उमेश-अच्युत।	एक लाख
६	सुदीप्तकागम (नवभेदात्मक)	परमेश्वर-ईश-त्रिमूर्ति-हुताशन।	एक लाख
७	सूक्ष्मागम (अभेदात्मक)	परमेश्वर-सूक्ष्म-भव-प्रभञ्जन।	एक लाख
८	सहस्त्रागम (दसभेदात्मक)	परमेश्वर-काल-भीम-खग।	अज्ञात
९	सुप्रभेदागम (अभेदात्मक)	परमेश्वर-धनेश-विश्वेश-शशि।	तीन करोड़
१०	अंशुमान् (द्वादशभेदात्मक)	परमेश्वर-अंशु-अग्र-रवि।	अज्ञात

अष्टादश रूद्रागम

क्रम संख्या	आगमों के नाम	प्रथम श्रोता	द्वितीय श्रोता
१	विजयागम	अनादिरूद्र	परमेश्वर
२	नि:श्वासागम	दशार्ण	शैलजा
३	पारमेश्वरागम	रूप	उशना
४	प्रोद्गीतागम	शूली	कच
५	मुखबिम्बागम	प्रशान्त	दधीचि
६	सिद्धागम	बिन्दु	चण्डेश्वर
७	सन्तानागम	शिवलिङ्ग	हंसवाहन

८	नारसिंहागम	सौम्य	नृसिंह
९	चन्द्रांशु-आगम (चन्द्रहासागम)	अनन्त	बृहस्पाति
१०	वीरभद्रागम	सर्वात्मा	वीरभद्र-महागण
११	स्वायम्भुवागम	निधन	पद्मज
१२	विरक्तागम	तेज	प्रजापाति
१३	कौरव्यागम	ब्रह्मणेश	नन्दिकेश्वर
१४	माकुटागम (मुकुटागम)	शिवाख्य (ईशान)	महादेव ध्वजाश्रय
१५	किरणागम	देवपिता	रूद्रभैरव
१६	गलितागम	आलय	हुताशन
१७	आग्नेयागम	व्योमशिव	अज्ञात
१८	?	?	?

गोपीनाथ कविराज के अनुसार अष्टादशवें आगम का नाम कही नही मिलता है, जब कि उपर्युक्त अष्टादश आगमों में वातुलागम को छोड़कर अन्य सम्पूर्ण आगमों के नाम यहाँ अवलोकित होते हैं । हो सकता है कि इनके मत में वातुलागम अष्टाविंशति आगमों के अन्तर्गत नही आता हो । अस्तु, तदनुसार श्रीकण्ठी के रूद्रागम की सूची में रौरवागम, विमलागम, विसरागम और सौरभेयागम अधिक है, साथ ही विरक्तागम, कौरव्यागम, मकुटागम तथा आग्नेयागम का नामोल्लेख नही है । इनमें किरणागम, पारमेश्वरागम, रौरवागम का उल्लेख अभिनवगुप्त विरचित "तन्त्रालोक" में भी है ।[26]

तन्त्र का भी तात्पर्य आगम है । तन्त्र के प्रमुखतया त्रिविध विभाग है – ब्राह्मणतन्त्र, बौद्धतन्त्र तथा जैनतन्त्र । पुनः ब्राह्मणतन्त्र भी उपास्य देवताओं के भेद के कारण तीन हैं - शैवागम, शाक्तागम तथा वैष्णवागम । इनमें भी वैष्णवागम (पाञ्चरात्रागम) विशिष्टाद्वैत के, शाक्तागम स्वरूपाद्वैत के तथा शैवागम द्वैत, अद्वैत तथा शक्तिविशिष्टाद्वैत के प्रतिपादक हैं ।[27] प्राचीनकाल में तान्त्रिक सम्प्रदायों की संख्या अत्यधिक थी । इनमें से सभी साहित्य-सम्पदा से समान रूप से समृद्ध थे, यह कथन न्यायोचित नही होगा । किसी सम्प्रदाय के ग्रन्थ अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं, तो किसी सम्प्रदाय का केवल अभिधान ही प्राप्त होता है ।

शिव या रूद्र की उपासना वैदिक काल से ही इस भारत भूमि में प्रचलित है । यजुर्वेद का यह मन्त्र इस तथ्य का प्रमाण है-

"नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च ।

मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥" [28]

दार्शनिक दृष्टि की विभिन्नता के कारण माहेश्वर तन्त्र के प्रमुखतया त्रिविध विभाग हैं- द्वैत (शिवतन्त्र), द्वैताद्वैत (रूद्रतन्त्र) तथा अद्वैत (भैरवतन्त्र) । पूर्वोक्त माहेश्वर मतों का प्रचार निम्नलिखित भिन्न- भिन्न प्रान्तों में है -

१. पाशुपत मत – गुर्जर (राजस्थान) ।

२. शैव सिद्धान्त मत – तमिलनाडु ।

३. वीर शैव मत – कर्णाटक ।

४. स्पन्द या प्रत्यभिज्ञा – कश्मीर ।[29]

पारमेश्वरागम के अनुसार आगमसम्मत षडविध दर्शनों में वीरशैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, वैनायक तथा कापालिक दर्शन ही परिगणित है –

"तन्त्रं तु षड्-विधं प्रोक्तं षड्दर्शनविभेदतः ।

वीरशैवं वैष्णवं च शाक्तं सौर विनायकम् ॥

कापालमिति विज्ञेयं दर्शनानि षडेव हि ॥"[30]

गोपीनाथ कविराज के अनुसार ये सम्पूर्ण विभिन्न सम्प्रदाय जो शिव से सम्बन्धित है, शैव अथवा माहेश्वर अथवा तान्त्रिक सम्प्रदाय के नाम से प्रचलित थे । वें हैं –

१ . कुलमार्ग या कौलमत **२. पाशुपत मत**

३ . लाकुल मत **४ . कापालिक मत**

५ . सोम मत **६ . महाव्रत मत**

७ . जङ्गम मत **८ . कारूणिक या कारूक मत**

९ . कालानल मत **१० . कालामुख मत**

११ . भैरव मत **१२ . वाम मत**

१३ . भट्ट मत **१४ . नन्दिकेश्वर मत**

१५ . रसेश्वर मत **१६ . रसेश्वर मत**

१७. सिद्धान्त (रौद्र) मत[31] ।

शैव दर्शन के मान्य आचार्य जे. सी. चटर्जी के अनुसार शैवों के तीन ही प्रमुख भेद है – आगमशास्त्र, स्पन्दशास्त्र तथा प्रत्यभिज्ञाशास्त्र ।[32] सिद्धान्त शिखामणि तथा सिद्धान्तागम के अनुसार शिव प्रोक्त आगम शैव, पाशुपत, सोम तथा लाकुल भेद से बहुविध थे, जिनमें शैव के चार भेद थे- वाम शैव, दक्षिण शैव, मिश्र शैव तथा सिद्धान्तशैव । वाम शैव शक्तिप्रधान, दक्षिण शैव भैरव प्रधान, मिश्र शैव सप्तमातृप्रधान तथा सिद्धान्तशैव वेदप्रधान थे ।[33]

पारमेश्वरागम (१/१६-१७) के अनुसार शैव सप्तविध है – वीर शैव, अनादिशैव, आदिशैव, अनुशैव, महाशैव, योगशैव तथा ज्ञानशैव ।

"वीरशैवं तथानादिशैवमादिपदं तत: ।
अनुशैवं महाशैवं, योगशैवं तु षष्ठकम् ॥
सप्तमं ज्ञानशैवाख्यं, तत्र सर्वोत्तमम् ।
वीरशैवमितीशानि, तदङ्गानीत्तराणि च ॥"[34]

सूक्ष्मागम में इन्ही सप्तविध शैवों के नामभेद पाये जाते है – आदिशैव, अनादिशैव, महाशैव, अनुशैव, अवान्तरशैव, प्रवरशैव तथा अन्त्यशैव ।[35] इनमें शिव अनादिशैव, आदिशैवों में (शिव के पञ्चमुख से प्रथम दीक्षित होने के कारण) कौशिक, कश्यप, भारद्वाज , अत्रि तथा गौतम परिगणित हैं । शैवागमों में उल्लिखित दीक्षाविधि से दीक्षित ब्राह्मण महाशैव तथा दीक्षासम्पन्न क्षत्रिय एवं वैश्य अनुशैव कहलाते हैं । यदि कोई शूद्र भी योग्यता के आधार पर शिवदीक्षा को प्राप्त करता है तो वह अवान्तर शैव कहलाता है । कुलाल (कुम्हार), पार्श्वक (पीठमर्दक) इत्यादि दीक्षा प्राप्त कर लेने पर प्रवरशैव कहलाते हैं । तदभिन्न अन्य जातियों के दीक्षासम्पन्न व्यक्ति अन्त्यशैव की कोटि में परिगणित किए जाते हैं । यह शैवों का सप्तविध विभाजन जाति पर आधारित है । सिद्धान्तशिखोपनिषद् के अनुसार शिव के पञ्चमुखों में सद्योजात मुख से ब्राह्मण, वामदेव मुख से क्षत्रिय, अघोर मुख से वैश्य, तत्पुरूष मुख से शूद्र तथा ईशान मुख से पञ्चशिवगणों (वीर, नन्दी, भृङ्गी, वृषभ तथा स्कन्द) का आविर्भाव हुआ –

"सद्योजाताद् ब्राह्मणा: सम्बभूवु:, वामदेवात् क्षत्रिया विशश्च ।

TH-20255
Jawaharlal Nehru University Library

अघोरात् शूद्रास्तत्पुरूषात् शिवस्य, पञ्चात्मकस्य गणा ईशानत: स्यु: ॥"[36]

तत्पश्चात् आचाराधारित शैवों का विभाजन भी सूक्ष्मागम में अवलोकित होता है । तदनुसार आचार भेद से शैवों के चार प्रकार है – सामान्यशैव, मिश्रशैव, शुद्धशैव तथा वीरशैव । शिव के दर्शन और सामान्य पूजा करनेवाले सामान्यशैव, शिव-विष्णु-ब्रह्मा-स्कन्द-गणेश-आदित्य तथा अम्बिका की समान भाव से पूजा करनेवाले मिश्रशैव, शिव को एकमात्र सर्वशक्तिशाली माननेवाले तथा उनकी पूर्णभक्तिभाव से विधिवत् पूजा करनेवाले शुद्धशैव एवं जिनके राग द्वेषादि दोष दूर हो गए हैं, आत्मतत्त्व की विचारणा में जो सदा लगे रहते हैं, तथा जिनके सारे विकल्पजाल नष्ट हो गए हैं, वें ही वीर शैव कहलाते हैं ।[37] चन्द्रज्ञानागम में अष्टविध शैवों का वर्णन है । इनके नाम इस प्रकार है- अनादिशैव, आदिशैव, पूर्वशैव, मिश्रशैव, शुद्धशैव, मार्गशैव, सामान्यशैव तथा वीर शैव ।[38]

षड्दर्शन समुच्चय के टीकाकार गुणरत्न ने शैव, पाशुपत, महाव्रतधर तथा कालामुख इन्हीं चारों वर्गों को माना है ।[39] वामनपुराण के अनुसार भी चतुर्विध शैव ही है – शैव, पाशुपत, कालवदन तथा कापालिक ।[40] स्वच्छन्दतन्त्र के अनुसार भी पाशुपत, लाकुल, मौसुल तथा कारूकवैमल ये चार शैव सम्प्रदाय है ।[41] यह भी कहा गया है कि ब्राह्मण शैव मत से, क्षत्रिय पाशुपत मत से, वैश्य कालामुख मत से तथा शूद्र कापाल मत से शिव की अर्चना करे ।[42] यामुनाचार्य प्रणीत आगमप्रामाण्य में कापालिक[43] तथा कालामुख एवं रामानुजाचार्य प्रणीत ब्रह्मसूत्रश्रीभाष्य में कापाल तथा कालामुख[44] द्विविध शैव ही वर्णित है । कर्णाटक प्रदेश में बहुतायत रूप में प्रचलित कालामुख का ही आधुनिक अभिधान वीर शैव है ।[45] जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग के मत में वेदान्त के आठ ही सम्प्रदाय है – शाङ्कर, वीरशैव, रामानुज, माध्व, वल्लभ, निम्बार्क, गौड तथा रामानन्द ।[46] सिद्धान्तप्रकाशिकाकार के अनुसार वेदान्त के केवल चार ही सम्प्रदाय हैं- भास्करीय, मायावादी, शब्दब्रह्मवादी, क्रीडाब्रह्मवादी ।[47]

इस प्रकार सम्पूर्ण आगमिक दर्शन के सम्प्रदाय निम्नलिखित हैं, जिन्होनें ब्रह्मसूत्र पर टीकाओं की रचना की हैं तथा जिन्हें वेदान्त के सम्प्रदाय के नाम से भी जाना जाता है -

(१) **अद्वैत – शङ्कर – शारीरक भाष्य ।**

(२) **भेदाभेद – भास्कर – भास्करभाष्य ।**

(३) **विशिष्टाद्वैत-रामानुज- श्रीभाष्य ।**

(४) **द्वैत- मध्व- पूर्णप्रज्ञ भाष्य ।**

(५) **द्वैताद्वैत – निम्बार्क – वेदान्तपरिजात ।**

(६) **शैवविशिष्टाद्वैत- श्रीकण्ठ –शैव भाष्य ।**

(७) **शक्तिविशिष्टाद्वैत-श्रीपति- श्रीकर भाष्य ।**

(८) **शुद्धाद्वैत – वल्लभाचार्य – अणुभाष्य ।**

(९) अविभागाद्वैत – विज्ञानभिक्षु- विज्ञानामृतभाष्य ।

(१०) अचिन्त्यभेदाभेद –बलदेवविद्याभूषण- गोविन्दभाष्य ।

(११) स्वरूपाद्वैत – श्रीपञ्चानन तर्करत्न भट्टाचार्य – शक्तिभाष्य ।[48]

(१२)

- <u>वीर शैव की आगममूलकता</u>

वीर शैव कामिकादि से वातुल पर्यन्त आगमों के उत्तर भाग में निर्दिष्ट मतों का पालन करते है । जैसा कि कहा गया है –

"सिद्धान्ताख्ये महातन्त्रे, कामिकाद्ये शिवोदिते ।

निर्दिष्टमुत्तरे भागे, वीरशैवमतं परम् ॥[49]"

पारमेश्वरतन्त्र में भी वीरशैव की आगममूलकता प्रदर्शित की गई है । तदनुसार वीरशैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, विनायक और कापाल ये छ: ही दर्शन है ।[50] पारमेश्वरागम के मत में आगमों के अन्तिम भाग में जङ्गम मत का वैभव छिपा हुआ है –

"अहो निबोधयाम्यद्य, श्रुणु जङ्गमवैभवम् ।

निगूढमागमान्तेषु, यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥"[51]

वीर शैवों का प्रमुख ग्रन्थ भी समस्त शैवतन्त्रों के उत्तर अर्थात् अन्तिम होने के कारण निरूत्तर ग्रन्थ-लोक में सिद्धान्त-शिखामणि के नाम से प्रसिद्ध है-

"सर्वेषां शैवतन्त्राणामुत्तरत्वान्निरूत्तरम् ।

नाम्ना प्रतीयते लोके यत्सिद्धान्तशिखामणि: ॥"[52]

- <u>वीर शैव अभिधान योग्यता</u>

वीर शैव के नामकरण के विषय में सिद्धान्त शिखामणि में कहा गया है-

"वी" शब्देनोच्यते विद्या, शिवजीवैक्यबोधिका ।

तस्यां रमन्ते ये शैवा:, वीरशैवास्तु ते मता: ॥

विद्यायां शिवरूपायां, विशेषाद्रमणं यत: ।

तस्मादेते महाभागा, वीरशैवा: इति स्मृता: ॥

वेदान्तजन्यं यज्ज्ञानं, विद्येति परिकीर्त्यते ।

विद्यायां रमते तस्यां, वीर इत्यभिधीयते ॥"[53]

सूक्ष्मागम में वीर शैव के विषय में कहा गया है –

"वितरागादिदोषत्वादात्मतत्त्वविचारणात् ।

विकल्पाकल्पशून्यत्वात्, वीरशैवमिति स्मृतम् ॥"[54]

एवं य: कुरूते भक्त्या, प्राणलिङ्गार्चनं सदा ।

वीरशैव: स विज्ञेय:, सर्वशैवोत्तमोत्तम: ॥"[55]

क्रियासार में वीर के "वी" अक्षर से विकल्प का बोध तथा "र" अक्षर से रहित का बोध किया गया है । तदनुसार वीरशैव का अर्थ विकल्प रहित शैव अथवा विरोधरहित शैव किया गया है ।[56] ध्यातव्य है कि "विद्यायां रमते" इस व्युत्पत्ति से विर शब्द निष्पन्न होता है न कि वीर । इस प्रश्न को डॉ० एस० एन० दास गुप्त ने **"भारतीय दर्शन के इतिहास (भाग ५)"** नामक ग्रन्थ में उपस्थित किया है, जिसका समाधान डा० चन्द्रशेखर शिवाचार्य ने **"सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा"** में निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया है – प्रथम समाधान तो यह है कि सिद्धान्तशिखामणिकार ने **"वी" शब्देनोच्यते विद्या"** कहा है, न कि "वि" शब्देनोच्यते विद्या" । इस प्रकार वीर का वी शब्द विद्या का वाचक है न कि वि शब्द । अत: ह्रस्व वि कैसे दीर्घ हो गया, यह शङ्का ही वहाँ पर नही है ।

द्वितीय समाधान यह है कि **"विद्यायां रमते वीर: इति"** इसमें दीर्घत्व का बाध नही हो रहा है । "ईर् गतौ कम्पने च' (अदादिगण १०८८) इस धातुपरक "विद्यायामीर्ते गच्छति प्रवृत्तो भवतीति' इस व्युत्पत्ति से "विर्' यह रूप निष्पन्न होता है । "अन्येष्वपि दृश्यते' (पाणिनिसूत्र ३/२/१०१) इस सूत्र से ड प्रत्यय करने पर विर तथा "व्यत्ययो बहुलम्' (पाणिनिसूत्र ३/१/८५) इस सूत्र से दीर्घ करने पर वीर शब्द निष्पन्न होता है ।

- **<u>वीर शैव के पर्याय</u>**

वीर शैव दर्शन को विशेषाद्वैत दर्शन, शक्तिविशिष्टाद्वैत दर्शन, अत्याश्रम दर्शन, शिवाद्वैत दर्शन तथा लिङ्गायत दर्शन भी कहा गया है । शक्तिविशिष्टाद्वैत दर्शन का निर्वचन इस प्रकार है –

"शक्तिश्च शक्तिश्च शक्ती, ताभ्यां (शक्तिभ्यां) विशिष्टौ (ईश-जीवौ), तयो: शक्तिविशिष्टयो: (ईशजीवयो:) अद्वैतम् शक्तिविशिष्टाद्वैतम् ।"[57]

जीव सङ्कुचितशक्तिविशिष्ट है, तथा शिव विकसितशक्तिविशिष्ट । शक्ति का सङ्कोच दूर होने से जीव शिवाकार हो जाता है और यही शक्ति की अद्वैतावस्था इस दर्शन को शक्तिविशिष्टाद्वैत पद से अलङ्कृत करती है । शिवाद्वैत का निर्वचन इस प्रकार है – **"शिवश्च शिवश्च शिवौ, तयोरद्वैतं शिवाद्वैतम् ।"** वस्तुत: जीव और शिव में कोई अन्तर नही है, इस दृष्टि से यह दर्शन शिवाद्वैत है । विशेषाद्वैत कहने का तात्पर्य है वि पद परम शिव का वाचक है और शेष पद जीव का । फलत: दोनो का अद्वैत विशेषाद्वैत दर्शन कहलाता है – **"वि: च शेष: विशेषौ, ईशजीवौ, तयो: अद्वैतं विशेषाद्वैतम् ।"** लिङ्गार्चना में पाशुपतव्रत, शिरोव्रत, अत्याश्रमव्रत तथा शाम्भवव्रत इत्यादि का वर्णन अथर्वशीर्ष, मुण्डक, कैवल्य, श्वेताश्वतर तथा कालाग्निरूद्र उपनिषदों में वर्णित है । आदित्य पुराण के अनुसार अत्याश्रमव्रत सभी वेदान्तों (उपनिषदों) का सार है – **"सर्ववेदान्तसारोऽयमत्याश्रम इति श्रुति: ।"** अत्याश्रम व्रत का अर्थ है लिङ्गाङ्गसंयोग और उस संयोग से विशिष्ट जीव अत्याश्रमी कहलाता है । उसके विषय में कहा गया है –

"लिङ्गं शिवो भवेत् , क्षेत्रमङ्गं संयोग आश्रय: ।

यस्तु लिङ्गाङ्गसंयुक्त:, स एवाऽत्याश्रमी भवेत् ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा, वानप्रस्थो यतिस्तु वा ।

यस्तु लिङ्गाङ्गसंयुक्त:, स एवाऽत्याश्रमी भवेत् ॥"[58]

वीर शैव का अपर नाम लिङ्गायत है । **"लिङ्गमायतिर्यस्य स लिङ्गायत:"** इस व्युत्पत्ति से जीवन के उत्तर काल में लिङ्ग ही प्रधान होता है । इस प्रकार दीक्षा के पश्चात् उत्तर काल में जिससे लिङ्ग-पूजा-ध्यानादि सम्पन्न होता है, वह लिङ्गायत है ।[59] फलत: वेदव्यास ने कहा है –

"शैलादेन महाभागा:, विचित्रा लिङ्गधारका: ।

शवस्योपरि लिङ्गश्च, ध्रियते च पुरातनै: ॥

लिङ्गेन सह पञ्चत्वं, लिङ्गेन सह जीवितम् ।"[60]

- **वीर शैव के अवान्तर भेद**

वीर शैव के भी आन्तरिक तीन भेद है । वें हैं- सामान्य, विशेष तथा निराभारि । कहा भी गया है-

"सामान्यं प्रथमं प्रोक्तं, विशेषश्च द्वितीयक: ।

निराभारं तृतीयं स्यात्, क्रमाल्लक्षणमुच्यते ॥"[61]

(१) **सामान्य वीरशैव** - गुरू के द्वारा प्रदर्शित मार्ग से नित्य भस्म और रूद्राक्ष धारण करता है । पञ्चाक्षर मन्त्र का जप नित्य बिना प्रमाद करता है और गुरू के द्वारा प्रदत्त इष्टलिङ्ग को सावधानी से धारण करता है । त्रिविध लिङ्गों (इष्टलिङ्ग, भावलिङ्ग तथा प्राणलिङ्ग) को पृथक् न मानकर उनकी एकीभाव से आराधना करता है । अपने पत्नी-पुत्र आदि के साथ भक्ति-भाव प्रदर्शित करता है । इनके शिवगोत्र, शिवनाम ही इनके नाम, सदाशिव-पार्वती ही इनके माता-पिता तथा शिव के किंकर ही इनके बन्धु हैं । शिव के प्रयोजन के लिए शरीरादि को समर्पित करनेवाले इनके परम मित्र हैं ।[62]

(२) **विशेष वीर शैव** – विशेष धर्मों का अनुष्ठान करने के कारण वह विशेष वीर शैव कहलाता है –

"विशिष्टधर्मानुष्ठानाद् विशेष इति कथ्यते ।"[63]

विशेष वीर शैवों को एक, दो या तीन माहेश्वरों को प्रतिदिन भोजन करा लेने के पश्चात् ही स्वयं उनका प्रसाद ग्रहण करना चाहिए । द्रोणपुष्प, विल्वपत्र, करवीरपुष्प, मल्लिका, उत्पल (कमल), पुन्नाग तथा जाति आदि में से किसी एक पुष्प को नित्य नियम पूर्वक इष्टलिङ्ग पर अर्पित करे । नित्य नैवेद्य, धूप, दीप आदि भी समर्पित करे । आवश्यकता पड़ने पर जङ्गम को अपना सर्वस्व समर्पित करने में भी सङ्कोच न करें । जङ्गमों के द्वारा उपभुक्त पदार्थों को आदर पूर्वक ग्रहण करे । यदि पत्नी, पुत्र तथा परिवार के अन्य सदस्य शिवकार्य से विमुख हैं, तो विशेष वीर शैव का आचरण करने वाले को इनका परित्याग कर देना चाहिए ।[64] इनको लिङ्गपूजा को ही सर्वस्व समझना चाहिए-

"लिङ्गभक्तिर्लिङ्गपूजा, लिङ्गसेवा तथा शिवे ।
लिङ्गध्यानं लिङ्गमनो, लिङ्गचर्यापरौ करौ ॥
लिङ्गश्रुतिपरे श्रोत्रे, लिङ्गार्पितरसादय: ।

लिङ्गनिर्माल्यसुरभिलाभो, घ्राणस्य पार्वति ॥
लिङ्गालङ्कारसन्दर्शनासक्ते लोचनेऽपि च ।
लिङ्गप्रदक्षिणपरौ पादौ च गिरिसम्भवे ॥
लिङ्गस्य पुरतो नित्यं तदर्थं चाङ्गचेष्टनम् ।
लिङ्गार्थं दत्तसर्वस्वं लिङ्गनिष्ठेति गीयते ॥"[65]

(३) **निराभार वीरशैव** – जो द्विविध कर्मों (पुण्य एवं पाप) कर्मों के भार से मुक्त है, वह निराभार वीर शैव कहा जाता है –

"जन्तो: पुण्यं पापमिति कर्म द्विविधमुच्यते ।
निर्वृत्तकर्मभारत्वान्निराभार इति स्मृत: ॥"[66]

यह जटाधारी, मुण्डित सिर वाला, शिखा धारी, काषाय वस्त्र धारी, नि:स्पृह , निर्भय, मौनव्रतधारण करनेवाला, सभी प्राणियों पर दया भाव रखने वाला, भिक्षाटन से भोजन ग्रहण करने वाला, भस्म एवं रूद्राक्षधारी तथा हस्तगत कमण्डलु एवं दण्ड धारी हो सकता है । **"माधुकरी भिक्षा"** (भ्रमर की तरह अनेक पुष्पों से मधु का एकत्रीकरण) से मात्र उदर पूर्ति के लिए भिक्षाटन करे । शिवभक्ति, शिवज्ञान, शिवमुद्रा, शिवव्रत, शिवलिङ्ग की पूजा में श्रद्धा तथा चित् की असत् वृत्तियों का निरोध करने वाला ही वास्तविक निराभार वीर शैव कहलाता है ।[67] चन्द्रज्ञानागम के मत में निराभारी वीर शैव के भी त्रिविध भेद होते हैं – स्वतन्त्र निराभारी, वैदिक निराभारी एवं नि:स्पृह निराभारी । इनमें स्वतन्त्र निराभारी मुण्डित या जटावाला, वैदिक निराभारी शिखा और यज्ञोपवीतधारी तथा नि:स्पृह मौनी एवं सभी प्राणियों पर दयाभाव प्रकट करनेवाला होता है ।[68] इस प्रकार वीर शैव के भेद को निम्नलिखित रूप से अवबोध किया जा सकता है –

<u>वीर शैव</u>

↙ ↓ ↘

(१) सामान्य (२) विशिष्ट (३) <u>निराभारि</u>

↙ ↓ ↘

(अ) स्वतन्त्र (ब) वैदिक (स) नि:स्पृह

चन्द्रज्ञानागम के अनुसार जङ्गम तथा स्थावर ये दोनो भगवान् शिव के रूप हैं । इनमें स्थावर के भी दो भेद हैं -स्वयंव्यक्त तथा प्रतिष्ठित । काशी विश्वेश्वर आदि का स्वरूप स्वयंव्यक्त है और आचार्य के द्वारा भूमिकर्षण से लेकर प्रतिष्ठा-पर्यन्त क्रियाकलाप के द्वारा संपादित स्वरूप प्रतिष्ठित कहलाता है । जङ्गम भी दो प्रकार के शास्त्रों में वर्णित है- मान्त्रिक एवं सहज । मन्त्र की शक्ति से आवाहित शिवस्वरूप वाला यह जङ्गम लिङ्ग मान्त्रिक कहलाता है । इसका अपर अभिधान चरलिङ्ग है । सहज नाम का जङ्गम माहेश्वर कहलाता है । माहेश्वर, चर, भक्त, शैव, तथा जङ्गम ये सब ईश्वर के उपदेश के अनुसार सहज जङ्गमों के विभिन्न नाम हैं । इन सहज जङ्गम की त्रिविध स्थितियाँ हैं – ब्रह्मचारी, गृही तथा निराभारी । इनमें क्रमश: प्रथम से अपर श्रेष्ठ है ।[69]

पारमेश्वरागम के अनुसार अवधूत, संन्यासी, योगी, पाशुपत, शिव, लिङ्गी, वीर, वीर शैव, महामाहेश्वर और यति ये वीर शैवात्मक योगियों के पर्याय हैं ।[70]

- **<u>वीर शैव के आचार्य</u>**

जब कभी धर्म की ग्लानि भूतल पर होती है, तब शिव अपने गणों को प्रेषित करके धर्म की पुन: स्थापना करते है । इसी प्रकार सनातन वीर शैव धर्म की स्थापना शिव अपने शिवगणस्वरूप पञ्चाचार्यों के द्वारा करते है –

"यदा- यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूतले ।

तदा तदाऽवतारोऽयं गणेशस्य महीतले ॥"[71]

वीर शैवों की वंशोत्पत्ति वीर, नन्दी, भृङ्गी, वृषभ और स्कन्द – इन पञ्च शिवगणों से मानी जाती है । ये पाँच वीर शैवों के गोत्र पुरूष हैं । ये पाँच गण शिव के सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरूष तथा ईशान मुखों से प्रकट हुए थे । शिव के ही ईशान मुख से पञ्चवक्त्र शिवगण प्रकट हुए । उनके पञ्चमुखों से मखारि, कालारि, पुरारि, स्मरारि तथा वेदारि ये पाँच शिवभक्त प्रकट हुए । इन पाँच शिव भक्तों को पञ्चमशाली कहा जाता है । इसी तरह पूर्वोक्त नन्दी, भृङ्गी आदि शिवगणों के वंश में उद्भूत वीर शैवों को जङ्गम तथा पञ्चगणों से उत्पन्न वीरशैवों को पञ्चमशाली कहते है । वीर शैव परम्परा में **"जङ्गम"** तथा **"पञ्चम"** ये दो वंश प्रसिद्ध है । वीर शैव धर्म के संस्थापक पञ्चाचार्य प्रत्येक युग में शिव के पञ्चमुखों (सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरूष तथा ईशान) से प्रकट होते हैं । युगभेद से इनके नाम भी पृथक्-पृथक् है । संक्षिप्त ज्ञान के लिए निम्नलिखित तालिका प्रस्तुत है[72] –

युग	नाम	शिव के मुख
सत्ययुग	एकाक्षरशिवाचार्य, द्व्यक्षरशिवाचार्य, त्र्यक्षरशिवाचार्य, चतुरक्षरशिवाचार्य एवं पञ्चाक्षरशिवाचार्य	सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरूष एवं ईशान
त्रेता	एकवक्त्र, दिवक्त्र, त्रिवक्त्र, चतुर्वक्त्र एवं पञ्चवक्त्र	सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरूष एवं ईशान
द्वापर	रेणुकशिवाचार्य, दारूकशिवाचार्य, घण्टाकर्णशिवाचार्य(शङ्कुकर्ण), धेनुकर्णशिवाचार्य एवं विश्वकर्णशिवाचार्य	सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरूष एवं ईशान
कलियुग	रेवणाराध्य, मरूलाराध्य, एकोरामाराध्य, पण्डिताराध्य एवं विश्वाराध्य	सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरूष एवं ईशान

कलियुग में शिव के पञ्चमुखों से प्रकटित पञ्चाचार्यों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत है[73] –

(१) **रेवणाराध्य :-** आन्ध्रप्रदेश के कुल्यपाक (कोनुलपाक) क्षेत्र के सोमेश्वर लिङ्ग से प्रादुर्भूत रेवणाराध्य ने धर्म के प्रचार के लिए कर्णाटक के चिक्कमगलूरूमण्डल के बालेहोन्नूर ग्राम में एक पीठ की स्थापना की । उसका आधुनिक नाम भी रम्भापुरी पीठ ही है । इन्होनें **"वीर गोत्र"** तथा **"षडविधि सूत्र"** का प्रतिपादन किया । इनके

रेणुक शाखा सिंहासन को वीर सिंहासन कहा जाता है । इस पीठ परम्परा के आधुनिक ११९ वें पीठाधीश्वर श्रीजगद्गुरू प्रसन्नरेणुकवीररूद्रमुनिदेवशिवाचार्य है। सिद्धान्तशिखामणि के अनुसार शिव ने सर्वप्रथम ब्रह्मा की सृष्टि की तथा उन्हें आदेश दिया कि वें समस्त लोकों की रचना करें किन्तु ब्रह्मा को यह समझ नही आया। ब्रह्मा के पुन: प्रार्थना करने पर शिव ने स्वयं सृष्टि का प्रादुर्भाव किया। उन्होनें प्रमथगणों को प्रकट किया। उन प्रमथगणों में शिव ने रेणुक और दारूक को (प्रिय होने के कारण) अपने अन्त:पुर का द्वारपाल नियुक्त किया। एक दिन ताम्बुल प्रसाद देने के लिए शिव ने रेणुक का आह्वान किया। शीघ्रतावशात् रेणुक दारूक को लांघकर शिव के पास पहुँचा, फलत: दण्डस्वरूप उसे मनुष्य योनि के लिए पृथ्वी पर प्रकटित होना पड़ा, किन्तु बहुविध प्रार्थना करने के कारण वें सोमेश्वर लिङ्ग से प्रकट हुए।[74] सिद्धान्तशिखामणि के इक्कीसवें परिच्छेद में इन्होनें ही रावण के भ्राता विभीषण को अभीष्ट प्रदान किया था।

(२) **मरूळाराध्य** :- मध्यप्रदेश के अवन्तिकानगर (उज्जैन) के वटक्षेत्र के सिद्धेश्वर महालिङ्ग से मरूळाराध्य प्रादुर्भूत हुए। कालान्तर में वे अवन्तिका को छोड़कर कर्णाटक के बल्ल्लारि मण्डल के उज्जयिनी ग्राम आए। वही उन्होनें धर्म प्रचार के लिए एक पीठ की स्थापना की। वह आज सद्धर्मपीठ नाम से विख्यात है। इन्होनें **"नन्दिगोत्र"** तथा **"वृष्टिसूत्र"** का प्रतिपादन किया। इनके सिंहासन को दारूकशाखा सिंहासन तथा सद्धर्मसिंहासन कहते है। मध्यप्रदेश के उज्जैनी नगर में भी सद्धर्मसिंहासन की एक शाखामठ थी, ऐसा सुना जाता है। इस पीठ परम्परा के आधुनिक १०९वें तथा ११०वें पीठाधीश्वर क्रमश: श्रीजगद्गुरू सिद्धेश्वर शिवाचार्य तथा मरूळाराध्य शिवाचार्य हैं।

(३) **एकोरामाराध्य** :- द्राक्षाराम क्षेत्र के रामनाथ लिङ्ग से प्रादूर्भूत एकोरामाराध्य ने धर्म प्रचार के लिए उत्तर-प्रदेश के केदारेश्वर के समीप एक पीठ की स्थापना की। वही आज केदारपीठ कहा जाता है। इन्होनें **"भृङ्गी गोत्र"** तथा **"लम्बनसूत्र"** का प्रतिपादन किया। इनके सिंहासन को धेनुकर्ण (शङ्कुकर्ण) शाखा सिंहासन तथा वैराग्यसिंहासन कहा जाता है। यह वैराग्य सिंहासन आज ओखीमठ के नाम से प्रसिद्ध है। जन्मेजय महाराज ने अपने माता-पिता की शिवलोक प्राप्ति के लिए सूर्यग्रहण पर्व काल में वैराग्यसिंहासनाधीश्वर आनन्दलिङ्गजङ्गम को मन्दाकिनी- क्षीर-गङ्गा-सरस्वती आदि नदियों के मध्य में अवस्थित केदारक्षेत्र को दानरूप में समर्पित किया था। वह दानसूचक एक ताम्रपत्र आज भी ओखीमठ में स्थित है। इस दानपत्र के आधार पर इतिहासवेत्ता ओखीमठ (उषामठ) को ५००० वर्ष प्राचीन मानते हैं। इस पीठ के आधुनिक ३२३वें पीठाधीश्वर रावलश्रीजगद्गुरू सिद्धेश्वरलिङ्गशिवाचार्य है।

(४) **पण्डिताराध्य** :- आन्ध्रप्रदेश के श्रीशैलक्षेत्र के मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिङ्ग से पण्डिताराध्य प्रादूर्भूत हुए। इन्होनें श्रीशैल क्षेत्र में एक पीठ की स्थापना की। वह आज सूर्यसिंहासनपीठ के नाम से प्रख्यात है। ये **"वृषभ गोत्र"** तथा **"मुक्तागुच्छ सूत्र"**

के प्रवर्तक रहे । इनके सिंहासन को धेनुकर्णशाखासिंहासन तथा सूर्यसिंहासन नाम से जाना जाता है । इस परम्परा के आधुनिक पीठाधीश्वर श्रीजगद्गुरू-उमापतिपण्डिताराध्य है ।

(५) **विश्वाराध्य** :- काशी क्षेत्र के विश्वनाथ ज्योतिर्लिङ्ग से विश्वाराध्य का प्रादुर्भाव हुआ । इन्होनें भी धर्म प्रचार के लिए काशी में एक पीठ की स्थापना की । उस ज्ञानपीठ को आज जङ्गमवाड़ी मठ के नाम से जाना जाता है । विश्वाराध्य **"स्कन्दगोत्र"** तथा **"पञ्चवर्णसूत्र"** के प्रतिपादक आचार्य माने जाते हैं । इनके सिंहासन को विश्वकर्ण शाखा सिंहासन तथा ज्ञानसिंहासन कहा जाता है । वाराणसी में विद्यमान यह मठ बहुप्राचीन माना जाता है । काशीनरेश जयनन्ददेव के द्वारा इस मठ को प्रदत्त दान पत्र के आधार पर इतिहासवेत्ता इसे ४००० वर्ष से भी अधिक प्राचीन मानते हैं । काशीनरेश जयनन्ददेव लिखित पृष्ठ अतीव जीर्ण हो जाने के कारण उन्हीं के वंशज प्रभुनारायणसिंह ने उसको पुन: ताम्रपत्र पर लिखवाकर मठ को प्रदान किया और यह दोनों पत्र आज भी इस मठ में अवस्थित हैं । एतदतिरिक्त हुमायूँ-अकबर-जहाँगीर-शाहजहाँ तथा औरङ्गजेब आदि मुगल राजाओं के भी दानपत्र इस मठ में उपलब्ध होते हैं । इस पीठ के ८५ वें पीठाधीश्वर श्रीजगद्गुरूविश्वेश्वरशिवाचार्य तथा सम्प्रति डा० चन्द्रशेखर शिवाचार्य हैं । इस जङ्गमवाड़ीमठ की एक शाखामठ नेपाल देश के भक्तपुर (भातगाँव) में है । सम्प्रति वहाँ भी नेपाल नरेश के द्वारा ६९२ विक्रमाब्द में प्रदत्त भूमिदानविषयक शिला विराजमान है ।

(६) **देवरदासिमय्य** :- वीर शैव के आचार्य अथवा संत शरण कहलाते है । जिनके वचन वीर शैवों के लिए पूजनीय है । वीर शैव के मत में वचनों की संख्या असंख्य है । सम्प्रति तीन सौ वचनकारों में द्वादश स्त्रियाँ हैं । बसव पूर्व प्रमुख वचनकारों में देवरदासिमय्य का स्थान सर्वप्रथम माना जाता है । इनके जीवन के बारे में अत्यल्प तथ्य ही परिज्ञात है । इनकी जन्म ११वीं शती माना जाता है । ये जाति के जुलाहे थे । कहा जाता है कि इन्होंने जैनियों को शास्त्रार्थ में पराजित करके चालुक्यराजा जयसिंह प्रथम की रानी को वीरशैव की दीक्षा दी थी । यह एक आश्चर्यजनक संयोग की बात है कि हिन्दी के आदिसंता कबीर तथा कन्नड़ के प्रारम्भिक कालीन संत देवरदासिमय्य दोनों जुलाहे थे ।[75]

इनके अतिरिक्त वीर शैव की विशाल परम्परा रही है, जिनके प्रमुख आचार्यों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत है -

(७) **बसवेश्वर** :- बसव एक समाज सुधारक के रूप में भारत में ही नही अपितु विश्व-विख्यात है । बसवेश्वर के प्रति डा० जाकिर हुसैन (भूतपूर्व राष्ट्रपति, भारत सरकार), श्री वी० वी० गिरि (भूतपूर्व राष्ट्रपति, भारत सरकार), स्व० इन्दिरा गांधी (भूतपूर्व प्रधानमंत्री, भारत सरकार), डा० एस० राधाकृष्णन् (भूतपूर्व राष्ट्रपति, भारत सरकार), स्व० डा० डी० सी० पावटे (भूतपूर्व राज्यपाल, पञ्जाब सरकार), श्री

एस० निजलिङ्गप्पा (भूतपूर्व मुख्यमंत्री, कर्णाटक सरकार), स्व० डा० सी० डी० देशमुख (भूतपूर्व वित्तमंत्री, भारत सरकार), स्व० के० एस० मुँशी (भूतपूर्व राज्यपाल, उत्तर प्रदेश सरकार एवं भूतपूर्व कुलपति भारतीय विद्यापीठ) एवं स्व० डा० सी० पी० रामस्वामी अय्यर (तिरूवाङ्कुर राज्य के भूतपूर्व दिवान) जैसे महान् आत्माओं ने सहानुभूति प्रकट की हैं, साथ ही एल० बी० भोपटकर, आर्थर मल्स एवं प्रो० के० एस० श्रीकण्ठन् ने भी बसव के प्रति अपने सद्विचार प्रकट किए हैं ।[76] तदनुसार जन्म, उद्योग, लिङ्ग, जाति और धार्मिक विश्वास के आधार पर निर्मित सभी प्रकार की असमानताएँ, विशेष योग्यताएँ, भेदभाव और व्यवच्छेद का पूर्णत: निषेध होना चाहिए । आधुनिक इतिहासज्ञ तथा दार्शनिक बसवेश्वर को वीर शैव धर्म का प्रचारक मानते हैं, न कि संस्थापक । यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वीर शैव मत में दीक्षित बसवेश्वर ने धर्म को पुन: जीवित किया । बसवेश्वर के विषय में डा० यदुवंशी[77] का मत है कि बसव वीर शैव के जन्मदाता न होकर इसके प्रबल सहायक थे । के० ए० नीलकण्ठ शास्त्री[78] के मतानुसार इस प्राचीन परम्परा के आविष्कारक पञ्चाचार्य ही थे । डा० एस० सी० नन्दीमठ तथ भण्डारकर[79] आदि के मत में बसवेश्वर ही वीर शैव के आद्याचार्य थे क्योंकि कन्नड़ तथा संस्कृत ग्रन्थों में ऐसा वर्णन है किन्तु इस मत का निराकरण स्वयमेव हो जाता है क्योंकि किसी भी कन्नड़ या संस्कृत के ग्रन्थों में ऐसा नही लिखा है कि बसवेश्वर ही वीर शैव मत के संस्थापक थे । मि० इ० थर्स्टन तथा डा० जे० एन्० फर्क्युहर के मत में पञ्चाचार्य ही इसके संस्थापक थे, न कि बसवेश्वर ।[80] बसव भगवान शङ्कर के वाहन नन्दी के अवतार माने जाते हैं । बसव शब्द वृषभ का तद्भव है ।[81] बसव के विषय में अधिक ज्ञान के लिए बसव समिति बेन्गलूरू द्वारा प्रकाशित **"बसव दर्शन"** नामक ग्रन्थ अत्यधिक उपयोगी है ।

(८) **अक्कमहादेवी :-** अक्कमहादेवी (११६० ई०) का जीवन नारी प्रेम का अप्रतिम उदाहरण है । मीरा की भाँति वह बाल्यावस्था से ही प्रेम की पुजारिन थी । उनके आराध्य का नाम चेन्नमल्लिकार्जुन है । अधिकांशत: वीर शैवों की भाँति अक्कमहादेवी ने सगुण से निर्गुण की यात्रा तय की । अद्भुत सुन्दरी होते हुए भी उन्होंने भोग-विलास को त्याज्य समझा ।

(९) **प्रभुदेव :-** प्रभुदेव या अल्लमप्रभु (११५० ई०) बसवेश्वर के गुरू है । वे बसवेश्वर द्वारा स्थापित अनुभव मण्डप के अध्यक्ष थे । प्रभुदेव का नाम "हठयोगप्रदीपिका" में नाथ सिद्धों की पंक्ति में आया है –

"अल्लाम: प्रभुदेवश्च घोड़ा चौलींच टिटिणि: ।
भानुकी नरदेवश्च खंड: कापालिकस्तथा ॥"[82]

कबीर के समान अल्लमप्रभु भी मूर्तिभञ्जक थे । तदनुसार वेद रटन्त बातें हैं, शास्त्र हाट की सूचना है, पुराण लम्पटों की गोष्ठी है, तर्क मेढ़ों की भिड़ंत है, भक्ति दिखाकर लाभ कमाने की वस्तु है एवं ईश्वर वांग्मनातीय वस्तु है ।

(१०) **अगस्त्यमुनि :-** अगस्त्यमुनि इस दर्शन के प्राचीन वक्ता माने जाते है किन्तु उपलब्ध सामग्री के अभाव में इनके विषय में अधिक ज्ञान नही प्राप्त होता है । **"ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य"** के मङ्गलश्लोक (१७) तथा **"सिद्धान्तशिखामणि"** में रेणुक-अगस्त्य संवाद की परिचर्चा के अतिरिक्त इनके विषय में वीर शैव साहित्य में रिक्तता ही अवलोकित होती है । तदनुसार अगस्त्य मुनि कृत, वीर शैव दर्शन से सम्बन्धित **"ब्रह्मसूत्रवृत्ति"** (जो **"लघुसूत्रवृत्ति"** (अगस्त्यसूत्र)[83] के नाम से प्रसिद्ध थी) की एक प्रति कुम्भकोण नगर में है, ऐसा सुना जाता है । वे मुनिशार्दूल (अगस्त्य)[84] समस्त आगमों के ज्ञान में पारङ्गत थे और उन्होनें अपने रूचिभेद के कारण बहुत से शिवज्ञानात्मक सिद्धान्तों का रेवणाराध्य से श्रवण किया था ।

(११) **चेन्नबसव :-** यह बसव के भानजे थे । निष्ठा में यह अल्लमप्रभु से साम्य रखते थे । इन्होंने कथनी और करनी के मध्य संगति न रखने वालों की कटु निन्दा की है ।[85]

(१२) **सिद्धराम :-** सिद्धराम (११५० ई०) प्रथम योगी तथा कर्ममार्गी थे । ये प्रभुदेव के प्रभाव से ज्ञानमार्गी बने । देवालय, तडाग एवं सराय का निर्माण करवा कर वह जनमानस की सेवा कर रहा था किन्तु अल्लमप्रभु ने उसे बताया कि आत्मज्ञान के बिना सर्वस्व व्यर्थ है । इस प्रकार उन्होंने कर्ममार्ग से ज्ञानमार्ग की यात्रा सम्पन्न की ।[86]

(१३) **हरिहर :-** इन वचनों का श्रवण करने के पश्चात् राधवांक, केरेयपद्मरस, चामरस, षडक्षरी आदि कवियों ने प्रबन्धकाव्य की रचना कर शिव भक्ति का प्रचार किया, जिनमें हरिहर (१२०० ई०) का स्थान इनमें मूर्धन्य है । बिना राजाश्रय प्राप्त इस कवि ने **"गिरिजाकल्याण"** नामक चम्पू काव्य की रचना की, जिसमें कुमार सम्भव की कथा वर्णित है । कर्णाटक एवं तमिलनाडु के शैव सन्तों पर उसने "रगले" छन्द में उसने १०८ काव्य की रचना की, जिनमें **"बसवराज रगले"** इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है । **"रक्षा शतक"** एवं **"पंपाशतक"** में हरिहर के भक्तिभाव से परिपूर्ण वृत्त हैं । हरिहर के पश्चात् वीर शैव भक्त कवियों में राधवांक (१२१५ ई०), केरेयपद्मरस, पालुकुरिके सोमनाथ, मग्गेय, मायिदेव (१४३० ई०), चामरस (१४३० ई०), तोंटद सिद्धलिङ्गयति (१४७० ई०) एवं निजगुणशिवयोगी (१५०० ई०) आदि मुख्य हैं । **"परमार्थगीते"** निजगुणशिवयोगी का उल्लेखनीय ग्रन्थ है । षडक्षरी ने वीरशैव भक्ति को चम्पूकाव्य के साँचे में ढालने का प्रयत्न किया । **"राजविलास", "शेखरविलास"** एवं **"शवरशङ्कर विलास"** आदि इनके ग्रन्थों में शिव भक्ति के बहुत ही मनोहर पद्य दृष्टिगोचर होते हैं ।[87]

(१४) **शिवयोगी शिवाचार्य :- "सिद्धान्तशिखामणि"** के कर्ता के रूप में प्रसिद्ध शिवयोगी शिवाचार्य इतिहासज्ञों द्वारा ८ वी शताब्दी के माने जाते है । यह पद्यात्मक रचना उपलब्ध सभी वीर शैव दर्शन के ग्रन्थों में सर्वाधिक प्राचीन है ।

(१५) **नीलकण्ठ शिवाचार्य** :- वीर शैवाचार्य परम्परा में दो नीलकण्ठ शिवाचार्य हैं। उनमें प्रथम ब्रह्मसूत्र के भाष्यकार है तथा द्वितीय उस भाष्यार्थ को कारिका रूप में संग्रह करनेवाले है । **"शङ्करदिग्विजय"** के अनुसार नीलकण्ठ शिवाचार्य का आद्यशङ्कराचार्य के साथ शास्त्रार्थ हुआ था ।[88] आद्य नीलकण्ठ शिवाचार्य द्वारा विरचित **"ब्रह्मसूत्रनीलकण्ठभाष्य"** के काठिन्य को दूर करने के लिए आधुनिक नीलकण्ठ शिवाचार्य ने सरल कारिका में उसको उपनिबद्ध किया है। कारिका रूप में यह ग्रन्थ **"क्रियासार"** नाम से प्रसिद्ध है। इसका रचनाकाल १४०० ई० माना जाता है । इस ग्रन्थ का प्रकाशन मैसूर नगर में स्थित प्राच्यविद्यासंशोधनालय से तीन खण्डों में क्रमश: १९५४ ई०, १९५७ ई० तथा १९५८ ई० में हुआ है।

(१६) **श्रीपतिपण्डितराध्य** :- ब्रह्मसूत्र के भाष्यकर्ता श्रीपतिपण्डितराध्य का काल ११वी शताब्दी माना जाता है। इनके भाष्य का अपर अभिधान **"श्रीकरभाष्य"** है। मैसूर के ही प्राच्यविद्यासंशोधनालय से यह ग्रन्थ दो खण्डों में क्रमश: १९७७-१९७८ ई० में प्रकाशित हुआ है।

(१७) **मायिदेव** :- **"अनुभवसूत्र"** के रचयिता मायिदेव का काल १५ वी शताब्दी माना जाता है । यह ग्रन्थ वातुल तन्त्र के अनुसार निर्मित है । एतदिरिक्त मायिदेव द्वारा **"वीरशैवोत्कर्ष", "शतकत्रय"** तथा **"प्रभुगीता"** आदि का भी प्रणयन हुआ है।

(१८) **नन्दिकेश्वर** :- **"लिङ्गधारणचन्द्रिका"** के रचयिता नन्दिकेश्वर को १५वी शताब्दी का आचार्य माना जाता है। इस ग्रन्थ में लिङ्गधारण प्रक्रिया के वैदिकत्व का निरूपण किया गया है । इसका प्रथम प्रकाशन १९०५ ई० में तथा द्वितीय प्रकाशन (हिन्दी अनुवाद के साथ) काशीजङ्गमवाड़ी मठ के द्वारा १९८८ ई० में हुआ है।

(१९) **स्वप्रभानन्दशिवाचार्य** :- यह काश्मीर प्रदेश के वीर शैवचार्य थे । इन्होनें **"शिवाद्वैतमञ्जरी"** नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया । इस ग्रन्थ में पूर्वपक्ष के रूप में अद्वैतवाद का मण्डन फिर उसका खण्डन करके शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन (वीरशैवदर्शन) को प्रतिष्ठापित किया है। यह ग्रन्थ काशीजङ्गमवाड़ी मठ से १९८६ ई० में प्रकाशित हुआ है। इनका काल इतिहासज्ञों के अनुसार १७ वी शताब्दी है।

(२०) **मरितोण्डदार्य** :- **"वीरशैवानन्दचन्द्रिका"** नामधेय स्वतन्त्र ग्रन्थ के रचयिता मरितोण्डदार्य का काल १७ वी शताब्दी माना जाता है । एतदतिरिक्त इन्होनें सिद्धान्तशिखामणि की **"तत्त्वप्रदीपिका"** नामक व्याख्या भी लिखी है । इनकी व्याख्यासहित **"सिद्धान्तशिखामणि"** १९०५ ई० में सोलापुर नगर में स्थित वारद प्रकाशन में दो खण्डों में प्रकाशित है।

(२१) **केलदीबसवभूपाल** :- १७ वी शताब्दी के कर्णाटक राज्य के केलदी संस्थान के ये राजा थे । इन्होने तीन ग्रन्थों का प्रणयन किया – **"शिवतत्त्वरत्नाकर"**, **"सुभाषितसुरद्रुम"** तथा **"सुक्तिसुधाकर"** । इनमें **"सुक्तिसुधाकर"** अनुपलब्ध है तथा मैसूर में अवस्थित प्राच्यविद्यासंशोधनालय में विद्यमान **"सुभाषितसुरद्रुम"** अभी तक

अप्रकाशित है। **"शिवतत्त्वरत्नाकर"** नामक ग्रन्थ प्राच्यविद्यासंशोधनालय से १९६४ ई० में प्रथम भाग, १९६९ ई० में द्वितीय भाग तथा १९८८ ई० में तृतीय भाग प्रकाशित हुआ।

(२२) **शङ्कर शास्त्री** :- इन्होने ईश-केन-मुण्डक तथा सिद्धान्तशिखोपनिषद् का भाष्य लिखा है। एतदतिरिक्त इन्होने व्याससूत्रों की वीरशैव के सिद्धान्तानुसार एक वृत्ति भी लिखी है। वह **"ब्रह्मसूत्रवृत्ति"** के नाम से प्रसिद्ध है। ये सम्पूर्ण ग्रन्थ मैसूर से प्रकाशित है।[89]

वीर शैव के आचार्य स्वयं को शिवाचार्य इस पद से अलङ्कृत करते हैं। कुछ शिवाचार्यों के कालज्ञान के लिए कर्णाटकलिपि में मुद्रित यह पट्ट सबल प्रमाण है, जिसका हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत है[90] -

क्रम संख्या	नाम	शक से	शक-पर्यन्त	अवधि	ऐक्यस्थान
१	श्रीगुरूसिद्धचैतन्यशिवाचार्य			१५०	पूवल्ली
२	श्रीगुरूशिवादित्यशिवाचार्य			९५	काञ्ची
३	श्रीगुरूविश्वेश्वरशिवाचार्य			७८	पूवल्ली
४	श्रीगुरूनीलकण्ठशिवाचार्य		८०	११७	हृषीकेश
५	श्रीगुरूचिद्धनशिवाचार्य	८०	११८	३८	श्रीशैल
६	श्रीगुरूशिवानुभवशिवाचार्य	११८	१९३	७५	पूवल्ली
७	श्रीगुरूस्वप्रभानन्दशिवाचार्य	१९३	२४०	३७	पूवल्ली
८	श्रीगुरूचिदम्बरशिवाचार्य	२३०	२४२	१२	नखपुर

इस पट्ट के पर्यालोचन से वीर शैव की परम्परा प्रथम शताब्दी तक जाती है। द्वितीय शताब्दी के वैशेषिक दर्शन के आचार्य शिवादित्य शिवाचार्य, जिन्होनें **"सप्तपदार्थी"** की रचना की वह भी शिवाद्वैतदर्पणकार शिवानुभव शिवाचार्य की परम्परा में अवस्थित है। **"वीर शैव गुरू परम्परा"** नामक एक लघु पाण्डुलिपि में निम्नलिखित शिक्षकों के नाम प्राथमिकता क्रम में इस प्रकार दिए गए है – **(१) विश्वेश्वर गुरू, (२) एकोराम, (३) वीरेश्वराध्य, (४) वीर भद्र, (५) विरणाराध्य, (६) मणिकाराध्य, (७) बच्चय्याराध्य, (८) वीर माल्लेश्वरााराध्य, (९) देशिकाराध्य, (१०) वृषभ, (११) अक्षक तथा (१२) मुख लिङ्गेश्वर।**[91]

एतदिरिक्त संस्कृत भाषा में वीर शैव का विशाल साहित्य अवलोकित होता है। इन साहित्य-ग्रन्थों के संक्षिप्त अवबोध के लिए डा० चन्द्रशेखर शिवाचार्य ने अपने ग्रन्थ **"सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा"** (प्रथम परिच्छेद, पृष्ठ ३०-३३) में इनकी नामावलि प्रस्तुत की है-

क्रम संख्या	ग्रन्थ-नाम	ग्रन्थ-लेखक	उनका काल
१	अमृतेश्वरभाष्य	सर्वेश्वरयति	१६०० ई०
२	अनादिवीरशैवसारसंग्रह	गूलूरूसिद्धवीरणाचार्य	
३	आनन्दगीता	मल्लिकार्जुनपण्डिताराध्य	११३० ई०
४	एकोत्तरशतस्थली	जक्कणार्य	
५	कविकर्णरसायन	यत्नन्दूरूषडक्षरकवि	१६६५ ई०
६	कामिकाद्यष्टाविंशत्यागमवृत्ति एवं दीपिका	सकलागमाचार्य	११५० ई०
७	कैवल्योपनिषत्सदाशिवभाष्य	सदाशिवाचार्य	१९४८ ई०
८	कैवल्यसार	मरितोण्डदार्य	१६६० ई०
९	चन्नबसवपुराण	कुमार स्वामी शास्त्री	
१०	चोलरेणुकसंवाद (शिवाधिक्यशिकामणि)	सोसलेरेवणाराध्य	१६६० ई०
११	ज्ञानशतक	सर्पभूषणशिवयोगी	
१२	नन्दिकेश्वरकारिका	नन्दिकेश्वराचार्य	
१३	ब्रह्मसूत्रनीलकण्ठभाष्य	नीलकण्ठशिवाचार्य	८०० ई०
१४	पण्डिताराध्यचरित	गुरूराज कवि	
१५	प्रश्नरेणुक (हस्तलेख)	रूद्रमुनीश्वर	
१६	बसवराजीय	पाल्कुरिकेसोमनाथ	११८० ई०
१७	बसवेशविजय	कञ्चिशङ्कराराध्य	
१८	भक्ताधिक्यरत्नावलि	षडक्षरदेव	१६६५ ई०
१९	भगवद्गीतावीरशैवभाष्य	टी० जी० सिद्धप्पाराध्य	१९६६ ई०
२०	भीमेश्वरगद्य	मल्लिकार्जुनपण्डिताराध्य	११३० ई०
२१	महानारायणोपनिषद्भाष्य	वृषभपण्डिताराध्य	१४०० ई०
२२	माचिदेवमनोविलास	बसवलिङ्गशिवयोगी	
२३	रेणुकचम्पू	ईशानशिवगुरू	९५० ई०
२४	रेणुकविजयचम्पू	सिद्धनाथ शिवाचार्य	९६० ई०
२५	रेवणसिद्धचरित	ईशान शिवगुरू	९५० ई०
२६	लिङ्गराजीय	लिङ्गराज (कोडगुनृप)	१८०० ई०
२७	लिङ्गोद्भवकाव्य	मल्लिकार्जुनपण्डिताराध्य	११३० ई०
२८	वातुलोत्तरत्तरव्याख्यान	गुब्बिमल्लणार्य	

२९	वीरमाहेश्वराचारसंग्रह	नीलकण्ठनागनाथाचार्य	१३०० ई०
३०	वीरमाहेश्वराचारसारोद्धार	लक्ष्मीधराराध्य	
३१	वीरशैवधर्मशिरोमणि	षडक्षरमन्त्री	१७०० ई०
३२	वीरशैवप्रदीपिका	मरितोण्डदार्य	१६६० ई०
३३	वीरशैवविलास	पादपूजाबसवलिङ्गदेशिकेन्द्र	
३४	वीरशैवसदाचारसंग्रह	नागनाथाचार्य	
३५	वीरशैवान्वयचन्द्रिका	आराध्यवीरेश शास्त्री	
३६	वीरशैवाचारकौस्तुभ	मौनप्पपण्डित	१७०० ई०
३७	वीरशैवाचारप्रदीपिका	गुरूदेव कवि	
३८	वीरशैवाचारसुधानिधि	गुरूबसव	१७०० ई०
३९	वीरशैवाष्टावरणप्रमाणाष्टकाभरण	इक्टूनन्दिकेश्वर शास्त्री	
४०	वीरशैवेन्दुशेखर	पण्डित सदाशिव शास्त्री	१९२० ई०
४१	वीरशैवोत्कर्षसंग्रह	पी० आर० करिबसवशास्त्री	१९०८ ई०
४२	वीरभद्रदण्डक	षडक्षरदेव	१६६५ ई०
४३	विवेकचिन्तामणि	लिङ्गराज (कोडगुनृप)	१८०० ई०
४४	वीरशैवोत्कर्षप्रदीपिका	चन्नबसवदेशिक	
४५	वेदान्तसारवीरशैवचिन्तामणि	निट्टूरूनञ्जणाचार्य	
४६	श्वेताश्वतरोपनिषद्वीरशैवभाष्य	टी० जी० सिद्धप्पाराध्य	१९६५ ई०
४७	शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन (शोधप्रबन्ध)	टी० जी० सिद्धप्पाराध्य	१९६५ ई०
४८	शङ्करगीता	मल्लिकार्जुनपण्डिताराध्य	११३० ई०
४९	शरणगीता (कन्नड़ वचनों का पद्यानुवाद)	टी० जी० सिद्धप्पाराध्य	१९६६ ई०
५०	शिवाधिक्यरत्नाकर	केलदीबसवभूपाल	१६०० ई०
५१	शिवाधिक्यरत्नावलि	षडक्षरदेव	१६६५ ई०
५२	शिवाद्वैतपरिभाषा	हूलीनीलकण्ठशिवाचार्य	१९२० ई०
५३	शिवाद्वैतदर्पण	शिवानुभव शिवाचार्य	
५४	शिवपञ्चस्तवव्याख्या	विश्वाराध्यपण्डित	
५५	शिवपञ्चविंशतिलीलाशीशतक (हस्तलेख)	काशीजगद्गुरूवीरभद्र-शिवाचार्य	१९४५ ई०
५६	शिवप्रसङ्गरत्नाकर	वृषभलिङ्गशिवयोगी	१०९० ई०
५७	शिवमन्त्रजपविधि (संग्रहात्मक)	मूरूसाविरमठगङ्गाधरस्वामी	१९२१ ई०
५८	शिवयोगप्रदीपिका	चन्नसदाशिवयोगी	

५९	शिवलिङ्गसूर्योदय (वीरशैवधर्मबोधकनाटक)	मल्लणाराध्य	
६०	शिवज्ञानदीपिका	मल्लार्यगुरू	१२०० ई०
६१	शिवसहस्रनामभाष्य	सङ्गमेश्वरयति	१७८० ई०
६२	शिवज्ञानप्रदीपिका	विश्वनाथाचार्य	
६३	शिवज्ञानबोध	शिवाग्रयोगीन्द्रशिवाचार्य	
६४	शिवज्ञानभाष्य	शिवाग्रयोगीन्द्रशिवाचार्य	
६५	शिवज्ञानसमुच्चय	जगदाराध्यनागेशगुरू	१२०० ई०
६६	शैवरत्नाकर	श्रीमज्ज्योतिर्नाथ	११०० ई०
६७	श्रीबसवोदाहरण	पाल्कुरिकिसोमनाथ	११८० ई०
६८	श्रुतिसारभाष्य	श्रीशिवपूजाशिवलिङ्गशिव-योगीन्द्र	१७४५ ई०
६९	सव्याख्या पञ्चश्लोकी	केलदीबसववसुमतीवास	
७०	सानन्दचरित	पद्मराज (केरेयपद्मरस)	११८० ई०
७१	सारोद्धार	लक्ष्मीदेवगुरू	१२०० ई०
७२	सिद्धान्तसारावलि	त्रिलोचन शिवाचार्य	
७३	सिद्धार्थबोधिनी (सिद्धान्तशिखामणि की कन्नड़ टीका)	सोसलेरेवणाराध्य	१६६० ई०
७४	स्तवनमञ्जरी	अभिनव कालिदास बसवप्प शास्त्री	
७५	हरलीला	उद्भटाराध्य	

संस्कृत भाषा में इससे भी अधिक ग्रन्थ हैं। तदतिरिक्त कन्नड़, मराठी, तेलगु, आङ्गल एवं तमिल भाषा में वीर शैव मत का विपुल साहित्य है। अल्लमप्रभु, चन्नबसव, माचय, गोग, सिद्धराम तथा महादेवी आदि भी वीर शैव के प्रमुख सहायक के रूप में विख्यात हैं।[92]

• वीर शैवों के अनुबन्ध चतुष्टय

वीर शैव अद्वैतवेदान्त अथवा उत्तरमीमांसा का ही अङ्ग है, अत: सामान्य रूप से वेदान्त के ही अनुबन्ध चतुष्टय वीर शैवों के भी अनुबन्ध है तथापि ब्रह्मश्रीशङ्करशास्त्री मुण्डकोपनिषद् के वीर शैव भाष्यान्तर्गत अनुबन्ध चतुष्टय की परिचर्चा करते है। तदनुसार- **"बलवदनिष्टानुबन्धीष्टसाधकताज्ञानजन्यप्रवृत्तिप्रयोजकम् अनुबन्धचतुष्टयम् ।"**[93] अर्थात् जो प्रबलकारी अनिष्ट तत्त्वों से सम्बन्ध न रखकर अभीष्ट साधनों से प्रयोजनप्राप्ति की ओर प्रवृत्त

करते हैं, वें अनुबन्ध चतुष्टय हैं – (१) विषय, (२) प्रयोजन, (३) सम्बन्ध तथा (४) अधिकारी । **"अनुबध्नन्ति अध्येतृन् इति अनुबन्धा:"**[94] इस निर्वचन के अनुसार जो अध्येताओं को बाँधे रखते हैं , उन्हें अनुबन्ध कहते हैं । ब्रह्मविद्या का अधिकारी परमशिव प्राप्ति का इच्छुक मुमुक्षु है । उसका प्रतिपाद्य विषय परशिव ब्रह्म है । इसका प्रयोजन सांसारिक प्रपञ्चों से पृथक् रहते हुए ब्रह्मसाक्षात्कार करना तथा इसका सम्बन्ध मुक्ति का ब्रह्मविद्या के साथ प्रकाश्य-प्रकाशकभाव सम्बन्ध है । कैवल्योपनिषत् के सदाशिवभाष्य के अनुसार वीर शैव का षड्-विध स्थल क्रम अनुबन्ध चतुष्टय के अनुसार है । तदनुसार वीरशैवदर्शनधर्मनिष्ठ मुमुक्षु अधिकारी, केवल शिवभक्ति से प्राप्तियोग्य लिङ्गाङ्गसामरस्यस्वरूपा परामुक्ति प्रयोजन, १०१ स्थलों का ज्ञान विषय तथा ज्ञान का शास्त्र के साथ प्रकाश्यप्रकाशक भाव सम्बन्ध है । जैसा कि सिद्धान्तशिखामणि (५/२३) कहती है –

"शास्त्रं तु वीरशैवानां षड्-विधं स्थलभेदत: ।

धर्मभेदसमायोगादधिकारिविभेदत: ॥"

इस कारिका की व्याख्या श्रीमरितोण्डदार्य के अनुसार निम्नलिखित है –

"अस्य शास्त्रस्य वीरशैवधर्मनिष्ठ: सन् मुमुक्षुर्भक्तोऽधिकारी, शिवभक्तिलभ्या शिवैक्यरूपपरा मुक्ति: प्रयोजनम्, एकोत्तरशतस्थलज्ञानं विषय:, ज्ञानस्य शास्त्रेण प्रकाश्यप्रकाशकभाव एव सम्बन्ध: । एवम् अनुबन्धचतुष्टयवत् एतत् शास्त्रम् ।"[95]

सिद्धान्तशिखोपनिषद् के अनुसार अनुबन्धचतुष्टय अध्येताओं की प्रवृत्ति का अङ्ग है । तदनुसार लिङ्गाङ्गसामरस्य शक्तिविशिष्टाद्वैत का साधन रूप विषय है । शिव ही पञ्चाक्षर मन्त्र है तथा उसका प्रयोजन है, जीवात्मा का शुद्ध-बुद्ध परमानन्दमय परमशिवस्वरूप हो जाना । जो सभी अर्थतत्त्व का वेत्ता है, वही दीक्षित शिष्य इसका अधिकारी है तथा शास्त्र और विषय का परस्पर प्रतिपाद्य-प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है ।[96]

निष्कर्षत: वीर शैव की यह प्राचीन परम्परा विविध संस्कृत, कन्नड़, मराठी एवं तमिल आदि भाषापरक ग्रन्थों तथा अनेक आचार्यों से सुशोभित है । इस परम्परा का आचार्यों ने धर्म तथा दर्शन द्विविध दृष्टि से अवलोकन किया है । वीर शैव ज्ञान-कर्मसमन्वयवादी है । धर्म जहाँ कर्म को प्राथमिकता प्रदान करता है, वही दर्शन ज्ञान को प्राथमिकता प्रदान करता है । उदाहरणत: औषधि का ज्ञान जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही उसका भक्षण या लेप भी आवश्यक है । फलत: ये द्विविध चिन्तन की धाराएँ सूक्ष्मतया पृथक् नही है । जहाँ धर्म को दर्शन माना गया है, वही दर्शन भी धर्म का ही पर्याय है । दोनों स्वात्मप्रत्यक्ष के महत्त्वपूर्ण

साधन हैं। स्थूलता में सूक्ष्मता का दिग्दर्शन करना दोनों का ही प्रधान लक्ष्य है। वीर शैव मत के अनुयायी जहाँ व्यवहार सञ्चालन के लिए सनातन परम्परा का सम्यक् परिपालन करते हैं, वही वें प्रत्येक कण में परब्रह्म शिव की भी भावना रखते हैं। इन द्विविध चिन्तन-धाराओं के सम्यक् परिपालन से समाज की आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक उन्नति होती है, क्योंकि एक ओर तो यह परम सत्ता स्थूलत: सखण्ड, सभेद, सद्वय, सक्रम तथा साकार है, तो दूसरी ओर अखण्ड, अभेद, अद्वय, अक्रम तथा निराकार है।

- **सन्दर्भिका :-**

---

1 मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूकभट्ट (ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य , पृष्ठ ८७)।

2 सिद्धान्तप्रकाशिका, पृष्ठ संख्या १९।

3 कैवल्योपनिषत्, प्रस्तावना , पृष्ठ संख्या २६।

4 Santa and savantas of the Sharada desh, p. 2 .

5 ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, श्रीपति,भूमिका पृ. ३१।

6 सिद्धान्तशिखोपनिषत्, श्लोक संख्या २२।

7 ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, १.१.३।

8 वही।

9 वही।

10 वही।

11 आगममीमांसा, विमर्शवेदिका पृ. ४।

12 वही।

13 वही।

14 वायुसंहिता, पूर्वखण्ड, ३२/११-१७।

15 ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, (द्वितीय सम्पुट), अधिकरण ८, सूत्र ३७ (सिद्धान्तागम एवं सिद्धान्तशिखामणि)।

16 सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा, पृष्ठ ७।

17 भास्करी, भाग २, पृष्ठ ८५।

18 योगसूत्र, १/२५, तत्त्ववैशारदी।

19 सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा, पृष्ठ ७।

20 वही।

21 कामिकागम भाग १, श्लोक संख्या १३२।

22 सिद्धान्तशिखोपनिषद्, प्रस्तावना पृ. ९।

23 आगममीमांसा,पृ. ४।

24 क्रियासार भाग १ , पृष्ठ ८५।

25 तन्त्र एवं आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ. ५९- ६१।

26 तन्त्र एवं आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पृ. ६१।

27 सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा, पृष्ठ ८।

28 यजुर्वेद १६/४१।

29 भारतीय दर्शन, पृ. ३८५।

[30] पारमेश्वरागम, १/२२-२३ ।

[31] तन्त्र एवं आगमशास्त्रों का दिग्दर्शन, पृष्ठ संख्या ४३ ।

[32] Kashmir Shaivism, pp. 7-21 .

[33] ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, द्वितीय सम्पुट, पृष्ठ ४४-४५ ।

[34] पारमेश्वरागम , भाग १ ।

[35] सूक्ष्मागम, क्रियाभाग ४-६ ।

[36] सिद्धान्तशिखोपनिषद्, ११, पृष्ठ ५४ ।

[37] सूक्ष्मागम, क्रियाभाग श्लोक ४-३० ।

[38] चन्द्रज्ञानागम, १०/४-५ ।

[39] भारतीय दर्शन का इतिहास, पृष्ठ ९ ।

[40] वामनपुराण, ६/८७ ।

[41] स्वच्छन्दतन्त्र, ११/७१-७२ ।

[42] आगममीमांसा, पृ, ३२ ।

[43] वही ।

[44] आगममीमांसा, पृ. ३३, श्रीभाष्य २/२/३५ ।

[45] वही ।

[46] सिद्धान्तशिखोपनिषद्, प्रस्तावना, पृ. ८ ।

[47] सिद्धान्तप्रकाशिका, पृष्ठ २४ ।

[48] सांख्य दर्शन, भूमिका, पृ २३-२४ ।.

[49] सिद्धान्तशिखामणि, ५/८ ।

[50] पारमेश्वर तन्त्र, १/२२-२३ ।

[51] पारमेश्वरागम, ४/३ ।

[52] सिद्धान्तशिखामणि, १/३१ ।

[53] सिद्धान्तशिखामणि, ५/१५-१६ पृ. ५७-५८ ।

[54] सूक्ष्मागम, क्रियापाद, ७/२९ ।

[55] वही, ६/५२ ।

[56] क्रियासार, भाग १, पृष्ठ ११ ।

[57] कैवल्योपनिषद्, प्रस्तावना, पृष्ठ २४ ।

[58] वही, पृष्ठ ३३-३५ ।

[59] सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा, पृष्ठ, १५ ।

[60] स्कन्दपुराण, केदारखण्ड, ७/४१-४२ ।

[61] सूक्ष्मागम, ७/२९-३० ।

[62] वही, ७/३०-३८ ।

[63] वही, ७/३९ ।

[64] वही, ७/४०-४७ ।

[65] वही, ७/४८-५१ ।

[66] वही, ७/६४ ।

[67] वही, ७/६५-७९ ।

[68] चन्द्रज्ञानागम, १०/४३-४५ ।

[69] वही, ४/४-८।

[70] पारमेश्वरागम, १०/६७-६८।

[71] सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा, पृ. १७।

[72] वही, पृ. १८।

[73] वही, पृ. १९-२२।

[74] सिद्धान्तशिखामणि, २/१४-३३ एवं ३/१-८८।

[75] हिन्दी एवं कन्नड़ साहित्य की प्रमुख धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ २३१।

[76] बसव दर्शन, पृष्ठ १२७-१३२।

[77] सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा, पृष्ठ २४।

[78] वही।

[79] वही।

[80] वही।

[81] हिन्दी एवं कन्नड़ साहित्य की प्रमुख धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ २३३।

[82] वही।

[83] भारतीय दर्शन का इतिहास भाग ५, पृष्ठ ५०।

[84] ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, द्वितीय सम्पुट, पृष्ठ ४४।

[85] हिन्दी एवं कन्नड़ साहित्य की प्रमुख धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ २४४।

[86] वही।

[87] वही, पृष्ठ २४६-२४८।

[88] शङ्करदिग्विजय, १५/४९।

[89] सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा. पृ. २३-३०।

[90] शिवाद्वैतदर्पण, प्रस्तावना, पृ.१२।

[91] भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग ५, पृ. ४४।

[92] वही, पृ. ५०।

[93] श्वेताश्वेतरोपनिषद् प्रस्तावना, पृ. ३१।

[94] वही, पृ ३०।

[95] कैवल्योपनिषद्, प्रस्तावना, पृ. ३३।

[96] सिद्धान्तशिखोपनिषद्, २ पृ. २१।

तृतीय अध्याय

वीर शैव दर्शन में तत्त्वमीमांसा

तृतीय अध्याय : वीर शैव दर्शन में तत्त्वमीमांसा

इस स्थूल सृष्टि में जब प्राणी का आविर्भाव होता है, तो सामान्यत: यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वह कहाँ से आया है ? उस प्राकट्य के पृष्ठ में कौन-सा कारण है ? यही स्वात्मविषयक जिज्ञासा ही संसार की सर्वश्रेष्ठ जिज्ञासा है एवं इसका समाधान सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ ज्ञान। वह कौन ऐसी सत्ता है जिस एकमात्र का ज्ञान हो जाने के पश्चात् किसी द्वितीय ज्ञान की आवश्यकता नही रह जाती है ?[1] इत्यादि प्रश्नों के उत्तर के लिए दर्शन रूपी सोपान का प्रयोग विद्वानों ने किया है। उस परम सत्ता का साक्षात्कार करना सबका लक्ष्य है, भले ही अनुभव की भिन्नता के कारण उनके अन्वेषण-मार्ग पृथक्-पृथक् हो। इस दर्शन की प्रणाली का समुचित अवबोध करने के लिए आचार्यों तथा महर्षियों ने त्रिविध प्रमुख प्रणालियों का चयन किया है। प्रथम दृष्ट्या किसी भी कार्य को देखकर उसके कारण की जिज्ञासा होती है। सामान्य दृष्टि भी उसके मूल स्वरूप का अन्वेषण करना चाहती है, क्योंकि उसके मूल स्वरूप का ज्ञान होने पर उसके विषय में सम्पूर्ण ज्ञान का होना स्वाभाविक है। यह कारण विषयक जिज्ञासा ही तत्त्वविषयक जिज्ञासा है। प्रस्तुत कार्य कौन-कौन से तत्त्वों का सम्मिलित रूप है ? यह ज्ञान हो जाने के पश्चात् व्यक्ति यह जानने का प्रयत्न करता है कि उसने किस साधन से उस ज्ञान को प्राप्त किया ? यह साधन विषयक जिज्ञासा प्रमाण विषयक जिज्ञासा है। इन दोनों का ज्ञान होने के पश्चात् प्राणी व्यवहार में उस ज्ञान का उपयोग करने की इच्छा प्रकट करता है और यह जिज्ञासा ही आचार विषयक जिज्ञासा है। इस प्रकार इन त्रिविध ज्ञान के पथों का अपने धर्म के अनुसार सम्यकतया निर्वाह करने पर मनुष्य इहलोक तथा परलोक में भी आनन्दित होते हुए अन्तत: मोक्ष को प्राप्त करता है। सभी दर्शनों या उनकी शाखाओं ने इन तथ्यों पर समुचित विचार किया है किन्तु प्रधानता या अप्रधानता के कारण उनके यहाँ इन त्रिविध तथ्यों में किसी का वर्णन अङ्गी रूप में है तो किसी का अङ्ग रूप में है। अस्तु, जिस प्रकार न्याय दर्शन में प्रमाण का प्रधानतया वर्णन होने से उसे प्रमाणशास्त्र, वैशेषिक दर्शन में पदार्थ की प्रधानता होने से उसे पदार्श शास्त्र कहा गया है, उसी प्रकार शैव दर्शन में तत्त्वों की प्रधानता के कारण यदि इसे तत्त्वशास्त्र कहा जाए तो संभवत: अतिशयोक्ति न होगी।

▪ तत्त्व

"मनुष्याणां सहस्त्रेषु, कश्चित् यतति सिद्धये।

यततामपि सिद्धानां, कश्चिन्मां वेति तत्त्वत: ॥[2]"

उपर्युक्त श्रीमद्भगवद्गीता के वचनानुसार तत्त्व की प्रधानता सर्वत्र व्याप्त है। तत्त्वज्ञानी ही ज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। तत्त्व जहाँ प्रत्येक वस्तु की सूक्ष्मता को दर्शाता है, वही वह उसके सम्पूर्ण ज्ञान का प्रथम सोपान भी सिद्ध होता है, क्योंकि ज्ञान की त्रिविध धाराओं (तत्त्वमीमांसा, प्रमाणमीमांसा एवं आचारमीमांसा) में प्रथमतया स्थान तत्त्व का ही अवलोकित होता है। जड़ या चेतन वस्तु का मूल रूप ही तत्त्व पद से अभिहित होता है। शास्त्रकारों के व्युत्पत्तिपरक अर्थानुसार **"सदसति तत् तस्य भाव: तत्त्वम्"** निश्चयात्मकता का भाव ही तत्त्व कहलाता है। जिस ज्ञान से नि:श्रेयस का अधिगम होता है, उसको भी वैशेषिक दर्शन में तत्त्व शब्द दिया गया है।[3] वस्तु के मूल स्वरूप का ज्ञान मोक्षप्राप्ति में उपयोगी माना गया है, अत: उसका मूलस्वरूप ही तत्त्व पद का अधिकारी होता है। स्थूलता को देखकर सूक्ष्मता की जिज्ञासा, कार्य को देखकर कारण की जिज्ञासा ही तत्त्वविषयक जिज्ञासा है । कार्य के ज्ञान होने पर मूल कारण विषयक जिज्ञासा स्वभावत: हुआ करती है और वही जिज्ञासा ही तत्त्व की जननी है। सृष्टि का प्रतिपादन करनेवाली जितनी भी श्रुतियाँ है, उनकी एकवाक्यता बादरायण ने ब्रह्मसूत्र के द्वितीय अध्याय के चतुर्थ पाद में **"गौण्यसम्भवात् तत्प्राक् श्रुतेश्च"**[4] इत्यादि सूत्रों में उत्तम प्रकार से की है। तदनुसार श्रुति में वर्णित सृष्टि क्रम के अनुसार ये तत्त्व पाये जाते हैं – पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पञ्च भूत। पञ्च तन्मात्रा – गन्ध, रस, रूप,स्पर्श और शब्द। इन तन्मात्राओं का ग्रहण करनेवाली श्रोत्र, त्वक्, अक्षि, रसना, और घ्राण, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ और इनका प्रेरक मन। वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ ये पञ्च कर्मेन्द्रियाँ तथा इनके अध्यक्ष प्राण, बुद्धि, महान्-आत्मा और अव्यक्त पुरूष ये ही तत्त्व श्रुतियों की सृष्टि प्रक्रिया में परिगणित हैं । इन्हीं तत्त्वों में परस्पर कार्य-कारण भाव श्रुतियों ने दिखलाया है। **"इन्द्रियेभ्यश्च परा ह्यार्था: अर्थेभ्यश्च परं मन:"** इत्यादि कठ-श्रुतियों के द्वारा परापर भाव भी बतलाया गया है।[5]

▪ <u>विभिन्न दार्शनिक मत में तत्त्व विचार</u>

इस सृष्टि की भिन्न- भिन्न सम्प्रदायों ने मीमांसा की है। किसी के मत में सृष्टि में एक ही सत्ता है, तो किसी के मत में अनेक की सत्ता है। तत्वों की संख्या भले ही प्रत्येक दर्शन में भिन्न-भिन्न हो, लेकिन सभी ने अपनी मति के अनुरूप सूक्ष्मता का दिग्दर्शन करने का प्रयत्न किया है। आलोचनात्मक दृष्टि से हम किसी भी सम्प्रदाय के मार्ग को अनुचित नही कह सकते। खण्डन-मण्डन तर्क की प्रक्रिया है, जिससे व्यवहार को सुचारू रूप से निर्वहण करने में हमें सहायता प्राप्त होती है। वाद- विवाद से कुछ नये तथ्य भी उपस्थित होते है, जिनकी ओर हमारा ध्यान पूर्व में नही गया होता है। इस प्रकार हमें ज्ञान की एक और नई धारा प्राप्त होती है। भारतीय दर्शन के द्विविध विभाजन किये गये हैं- आस्तिक एवं नास्तिक। इनमें

वेदसम्मत, पूर्वजन्म में विश्वास रखनेवाला तथा ईश्वर को येन केन प्रकारेण मानने वाला आस्तिक एवं तद्विपरीत नास्तिक मत है। आस्तिकों में प्रमुखतया न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग तथा पूर्वमीमांसा-उत्तरमीमांसा (वेदान्त) परिगणित हैं, जब कि प्रमुख नास्तिकों में चार्वाक, बौद्ध तथा जैन दर्शन का स्थान है। वेदान्त दर्शन भारतवर्ष की ऋषि-परम्परा का सूक्ष्मतम निदर्शन है, जो इहलौकिक तथा पारलौकिक द्विविध सत्य का आनुभविक ज्ञान सृष्टि को प्रदान करता हैं। **"मृग्याभेदेऽपि मार्गभेदस्य संभव:"** इस आधार पर भले ही सर्वोच्च सत्ता का अन्वेषण करना इन सबका परम लक्ष्य है, किन्तु साक्षात्कार-मार्ग के अनुभव की भिन्नता के कारण वेदान्त सम्प्रदाय के ग्यारह शाखाएँ हैं। सबने स्व-स्व मत्यानुसार इस सृष्टि की विवेचना की है। जिनमें कुछ प्रमुख वेदान्त सम्प्रदाय की तत्त्वविषयक चर्चा संक्षिप्त रूप में यहाँ प्रस्तुत है –

▪ <u>प्रमुख वेदान्त सम्प्रदाय के तत्त्व</u>

वेदान्त के प्रमुख ग्यारह सम्प्रदाय है, जिनमें कुछ सम्प्रदायों के तत्त्वों की संक्षिप्त चर्चा यहाँ प्रस्तुत है-

रामानुजाचार्य के मत में सकल पदार्थ-समूह प्रमाण और प्रमेय भेद से दो प्रकार का माना गया है। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन प्रमाण हैं। प्रमेय तीन प्रकार का है- द्रव्य, गुण तथा सामान्य। पुन: द्रव्य छ: प्रकार के माने गए हैं – ईश्वर, जीव, नित्यविभूति, ज्ञान, प्रकृति और काल। गुण दस प्रकार के हैं – सत्त्व, रजस्, तमस्, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, संयोग और शक्ति। द्रव्य गुण उभयात्मक ही सामान्य है। ईश्वर के पाँच प्रकार है- पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी, और अर्चावतार। व्यूह के भी चार प्रकार हैं – वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरूद्ध।

माध्व मत में दस पदार्थ माने जाते हैं- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, विशिष्ट, अंशी, शक्ति, सादृश्य और अभाव। तदनुसार बीस द्रव्य (परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, अव्याकृताकाश, प्रकृति, गुणत्रय, महतत्त्व, अहङ्कार, मन, इन्द्रिय, मात्रा, भूत, ब्रह्माण्ड, अविद्या, वर्ण, अन्धकार, वासना, काल और प्रतिबिम्ब) एवं रूप, रस, स्पर्श, गन्ध, संख्या, परिमाण, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, गुरूत्व, लघुत्व, मृदुत्व, काठिन्य, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दु:ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार, आलोक, शम, दम, कृपा, तितिक्षा, बल, भय, लज्जा, गाम्भीर्य, सौन्दर्य, धैर्य, स्थैर्य, शौर्य, औदार्य आदि अनेक गुण इनके पदार्थ-संग्रह आदि ग्रन्थों में पाए जाते हैं। शङ्कराचार्य के मत में सृष्टि में एकमात्र तत्त्व है। उसी तत्त्व से

विश्व का प्राकट्य तथा लय होता है। प्रत्येक कण-कण में वह विद्यमान है। इस प्रकार वेदान्त सम्प्रदाय के प्रवर्त्तकों में शङ्कर को छोड़कर प्राय: सभी ने द्वैत का ही समर्थन किया है।

▪ तत्त्वमीमांसा

सच्चिदानन्द स्वरूप परशिव ब्रह्म में अविनाभाव सम्बन्ध से विद्यमान विमर्शशक्ति के स्फुरण से छत्तीस तत्त्वों का जगत् उत्पन्न होता है। इनके नाम इस प्रकार हैं-

शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, तथा सद्विद्या – पञ्च शुद्धतत्त्व।

माया, काल, नियति, कला, विद्या, राग तथा पुरूष – सप्त शुद्धाशुद्ध तत्त्व।

प्रकृति, मन, बुद्धि, अहङ्कार, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, घ्राण, जिह्वा, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी।[6]

इस प्रकार शिव से लेकर पृथ्वी पर्यन्त छत्तीस तत्त्वों का सङ्कोच तथा विस्तार चलता है। शिवावस्था हो या फिर जीवावस्था पञ्चकृत्य (सृष्टि, स्थिति, संहार, अनुग्रह तथा तिरोधान) निरन्तर चलता रहता है। शिव माया के प्रभाव से पञ्चकञ्चुकों से युक्त होकर अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है और त्रिविध मलों (मायीय, कार्म तथा आणव) से युक्त होकर जीवावस्था को प्राप्त होता है।

इस दर्शन में शक्तिविशिष्ट परशिव ही जगत् से अभिन्न निमित्त तथा उपादान कारण स्वीकार किया जाता है –

"आत्मशक्तिविकासेन, शिवो विश्वात्मना स्थित :।

कुटीभावाद्यथा भाति, पट: स्वस्य प्रसारणात्॥"[7]

सृष्टि प्रपञ्च में विद्यमान वस्तुओं को न्याय-वैशेषिक पदार्थ शब्द से अभिहित करते हैं लेकिन सांख्य-योग तथा वीर शैव दर्शन के आचार्यों द्वारा तत्त्व शब्द का व्यवहार किया जाता है। ये छत्तीस तत्त्व शक्तिविशिष्ट परशिव के विकास रूप हैं, अत: ये मिथ्या नही हैं। तत्त्व शब्द का तात्पर्य है –

"तत्त्वं नाम अनारोपितं रूपम् , प्रमितिविषयत्त्वं वा।"[8]

अर्थात् जिस सत्ता पर किसी रूप का आरोपण न हुआ हो या जो प्रमिति (प्रमा) का विषय हो, वह तत्त्व कहा जाता है।

वातुलशुद्धाख्यतन्त्र के अनुसार तत्त्व निष्कल (कला से अपरामृष्ट) स्वरूप का अपर नाम है –

"निष्कलं तत्त्वमित्युक्तं सकलं मूर्तिरूच्यते ॥"[9]

इस सृष्टि में ज्ञानियों की अपेक्षा अज्ञानियों की संख्या अत्यधिक है । शङ्कराचार्य के अद्वैतवेदान्त के अनुसार जगत् प्रपञ्च को मिथ्या कह देने से यद्यपि ज्ञानीजन प्रपञ्च में आस्था का परित्याग करके परब्रह्म में निष्ठावान हो जाएगें किन्तु उनके वचनों के उपदेश से अज्ञानीजन नित्यनैमित्तिकादि कर्मों से विमुख होकर नास्तिक हो जाएगें । फलत: लौकिक जीवन में निराशा उत्पन्न हो जाएगी । अत: प्रत्येक कण को शिवस्वरूप सत्य मानते हुए आनन्दमय जीवन व्यतीत करना चाहिए । कहा भी गया है –

"जीव: सत्यं जगत्सत्यम्, शिव: सत्यं स्वभावत: ।

तयोरभेद: सत्यं वा, क्रिमिभ्रमरयोरिव ॥"[10]

"पत्रशाखादिरूपेण, यथा तिष्ठति पादप: ।

तथा भूम्यादिरूपेण, शिवो एको विराजते ॥"[11]

- <u>छत्तीस तत्त्वों में शिव</u>

(१) **शिव** – शिव शब्द का अर्थ है स्वयंप्रकाश । इस तत्त्व से बढ़कर कोई तत्त्व नही है-" **शिवतत्त्वात् परं नास्ति यथा तत्त्वान्तरं महत्"** ।[12] "वश् कान्तौ' धातुपाठ में परिगणित कान्ति (प्रकाश) अर्थ के वाचक वश् धातु से वर्णविपर्यय करने पर शिव शब्द की निष्पत्ति हुई है । इसमें निम्नलिखित वचन प्रमाण है –

"हिंसिधातो सिंहशब्दो, वशकान्तौ शिव: स्मृत: ।
वर्णवत्ययत: सिद्ध:, पश्यक: कश्यपो यथा ॥"[13]

शिव शब्द पर अमरकोष की सुधा व्याख्या के अनुसार "अर्श आद्यच् (अष्टाध्यायी, ५/२/१२७) । शिवयतीति वा । "तत्करोति" (वार्तिक, ३/१/२) इससे तथा "ण्यन्तात् पचाद्यच्" (अष्टाध्यायी, ३/१/१३४) सूत्र की सहायता से शिव शब्द निष्पन्न होता है ।[14] शिव स्वरूप दो अक्षरों में अकार ऋक् एवं साम का, इकार यजुष का, शकार अथर्व का एवं वकार व्याकरण शास्त्र का सम्मिलित रूप होने से वह सभी वेदवेदाङ्गों का सार है ।[15]

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की जननी चिच्छक्ति के साथ अविनाभावसम्बन्ध से रहनेवाला निर्गुण निष्कल परशिवलिङ्गस्वरूप ब्रह्म ही शिव पद से अभिहित होता है । परमात्मा परब्रह्म को शिव इसलिए भी कहा जाता है कि उसमें स्वाभाविक रूप से अनादिकालीन मल-संश्लेष का

प्रागभाव रहता है, अत: वह अत्यन्त परिशुद्ध आत्मा कहलाता है। सम्पूर्ण कल्याणमय गुणों का एकमात्र पिण्डस्वरूप ईश्वर के सदृश, आश्रितों का अत्यन्त शिवप्रद होने के कारण विद्वान् उसे शिव कहते है। जैसा कि कहा गया है –

"अनादिमलसंश्लेषप्रागभावात् स्वभावत: ।
अत्यन्तपतिशुद्धात्मेत्यतोऽयं शिव उच्यते ॥
अथवाऽशेषकल्याणगुणैकघन ईश्वर : ।
आश्रिताऽत्यन्तशिवद: शिव इत्युच्यते बुधै : ॥"[16]

महाभारत के कर्णपर्व के अनुसार "मेरे लिए वें सभी समान हैं, जो दानव और मानव हैं। मैं सभी जीवों का शिवकारक हूँ, अत: मेरा शिवत्व प्रतिपादित होता है। अनुशासन पर्व में कहा गया है कि सभी प्रयोजनों के प्रारम्भ में नित्य मनुष्यों के शिव (मंगल) की कामना करते हुए देदीप्यमान रहनेवाला शिव कहलाता है –

"समा भवन्ति ते सर्वे, दानवा मानवाश्च ये ।

शिवोऽस्मि सर्वभूतानां, शिवत्वं तेन मे स्मृतम् ॥

समेधयति यन्नित्यं, सर्वार्थानामुपक्रमे ।

शिवमिच्छन् मनुष्याणां, तस्मादेष शिव: स्मृत ॥"[17]

शिव अपनी इच्छा से अन्त:करण में भी स्थित है तथा बाह्य-जगत में भी वही है। योगी के जैसे वह बिना उपादान कारण के भी सम्पूर्ण विषयों का प्रकाशन करते है।[18] जिस प्रकार से पत्र-पुष्पादि के रूप में वृक्ष एक ही कहलाता है, उसी प्रकार भूम्यादि के रूप में शिव भी एकात्मक ही है।[19] तन्तु से उत्पन्न पट जिस प्रकार तन्तु पटमय ही कहा जाता है, उसी प्रकार शिव से उद्भूत यह चराचर शिवमय है।[20] भृङ्ग के ध्यानादि के कारण, जिस प्रकार कीट भी भृङ्ग बन जाता है, उसी प्रकार शिव के ध्यानादि से जीव भी शिव ही हो जाता है।[21] कूर्म पुराण के अनुसार सूर्य पृथक् देव न होकर वह भी शिवात्मक है।[22] शिव तत्त्व के विषय में पञ्चवर्णसूत्रमहाभाष्यकार कहते हैं-

"सिद्धसर्वज्ञं सर्वैश्वर्यसम्पन्नं सर्वानुग्राहकं सर्वकर्मसमाराध्यं निरस्तसमस्तदोषकलङ्कं निरतिशयमाङ्गल्यगुणरत्नाकरं स्वभावनिर्मलदृक्क्रिया लक्षणशक्तिविशिष्टं शिवतत्त्वमभिधीयते ।"[23]

अर्थात् यह शिवतत्त्व सर्वज्ञ, सभी ऐश्वर्यों से सम्पन्न, सब पर अनुग्रह करनेवाला, सभी प्रकार के कर्मों से समाराधनीय, सभी प्रकार के दोष-रूपी कलङ्क से अस्पृष्ट, अनन्त प्रकार के मङ्गलमय कल्याण गुणों का समुद्र, स्वभावत: निर्मल दृक्शक्ति तथा क्रियाशक्ति से सम्पन्न है । पञ्चवर्णमहासूत्र है- **"शिव एव आत्मा"** । यहाँ एव शब्द अन्य धर्मों का परिहारक है । तदनुसार शरीर, प्राण, बुद्धि एवं शून्य इत्यादि को आत्मा नही माना जा सकता, क्योंकि यह शिव ही शरीर, प्राण एवं बुद्धि इत्यादि के रूप में कल्पित प्रमाता में अकल्पित अहंविमर्शमय सत्य प्रमाता के रूप में स्फुरित होता है । जैसा कि कहा गया है-

"परमात्मस्वरूपं तु सर्वोपाधिविवर्जितम् ।

शिवत्वमात्मनो रूपं सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥"[24]

वीर शैव दर्शन के स्थलात्मक ब्रह्म के परिप्रेक्ष्य में शिव तथा जीव का स्वरूप निम्न तालिका से स्पष्ट हो पाता है[25] –

स्थल (परब्रह्मशिव)											
लिङ्गस्थल (ईश)						अङ्गस्थल (जीव)					
भावलिङ्ग-स्थल (ईश्वर)		प्राणलिङ्ग-स्थल (हिरण्यगर्भ)		इष्टलिङ्ग-स्थल (विराट्)		योगाङ्ग-स्थल (प्राज्ञ)		भोगाङ्ग-स्थल (तैजस)		त्यागाङ्ग-स्थल (विश्व)	
महालिङ्ग स्थल	प्रसाद-लिङ्ग-स्थल	चरलिङ्ग-स्थल	शिव-लिङ्ग-स्थल	गुरूलिङ्ग-स्थल	आचार-लिङ्ग-स्थल	ऐक्य-स्थल	शरण-स्थल	प्राणलिङ्गि-स्थल	प्रसादि-स्थल	महेश-स्थल	भक्त-स्थल

शिवाधिक्यरत्नावलिकार के अनुसार शाङ्करभाष्य में जिस परा चित् शक्ति को ब्रह्म कहा गया है, श्रीभाष्य में उसी को परा वैष्णवी शक्ति के रूप में परब्रह्म निर्धारित किया गया है । श्रीकण्ठ भाष्य में उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र एवं श्रीमद्भगवद्गीता इस प्रस्थानत्रयी के प्रमाण उपस्थित करते हुए चित्-शक्ति को परम शिव की शक्ति स्वीकार करते हुए चित्-शक्ति विशिष्ट परम शिव को ही परब्रह्म सिद्ध किया गया है ।[26] वह शिवतत्त्व एक है तथा सभी तत्त्वों में गुप्त रूप से विद्यमान है । वह सर्वव्यापक होते हुए भी सभी प्राणियों के अन्त:करण में निवास करता है । वह सभी प्राणियों के पाप-पुण्य का साक्षी है एवं मोक्ष के आनन्दानुभव में लीन शक्ति सङ्कोच के कारण निर्गुण भी है । जैसा कि श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है-

"एको देव: सर्वभूतेषु गूढ: सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।

कर्माध्यक्ष: सर्वभूताधिवास: साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥"[27]

यह सत्-चित्-आनन्द स्वरूप परब्रह्म अपने में ही प्रकाशित हो रही इच्छाशक्ति का स्फुरण होने पर छत्तीस तत्त्वों के रूप में विभक्त हो जाता है । आगमानुसार आदि और अन्त से रहित, शान्त स्वरूप, सबके परम कारण भगवान् शिव से प्रथमत: इच्छाशक्ति और तब ज्ञान और क्रियाशक्ति का प्रादुर्भाव होता है । तत्पश्चात् चतुर्दश भुवनों और उसके निवासी भूतों की उत्पत्ति होती है । इनमें चिदचिदशक्ति से विशिष्ट परब्रह्म शिव की गणना अनौपचारिक ही है, क्योंकि वास्तव में तत्त्वों के अन्तर्गत इनकी गणना ही नही होती ।[28] वातुलशुद्धाख्य तन्त्र के अनुसार शिवतत्त्व निष्कल है ।[29] ज्ञान के कारण जब परब्रह्म शिव तत्त्व का साक्षात्कार होता है, तब अद्वैत की प्राप्ति स्वयमेव हो जाती है । ज्ञानरहित मनुष्य को यह प्राप्त कदापि नही होती-

"साक्षात्कृतं परं तत्त्वं यदा भवति बोधत: ।

तदाद्वैतसमापत्तिर्ज्ञानहीनस्य न क्वचित् ॥"[30]

उस ज्ञान के सम्बन्ध में कहा गया है - वह न कारण है न कार्य है तथा जो समस्त उपाधियों से रहित है वह ब्रह्म है और मैं भी वही हूँ ऐसी दृढ़ निष्ठा ज्ञान पद से अभिहित होती है –

"अकारणमकार्यं यदशेषोधिवर्जितम् ।

तद्ब्रह्म तदहं चेति निष्ठा ज्ञानमुदीर्यते ॥"[31]

- **<u>शिव के विशेषण</u>**

शिव साक्षात् चिन्मय, आनन्दस्वरूप, विभु, सर्वव्यापक, निर्विकल्पक, निराकार, निर्गुण, निष्प्रपञ्चक, अमेय (अपर्याप्त रमणीय गुणों का अभाव), अनिर्वचनीय, अगम्य, जन्म-मृत्यु-जरा-मोह-काम-क्रोधादि से रहित, परात्पर, सूक्ष्म, नित्य, सर्वान्त:स्थित, अव्यय, निन्दारहित, अतुलनीय, अप्रमेय, आमयरहित, परमतत्त्व, सर्वगत, सर्वान्तर्यामी, क्षयरहित, अनुपम, अप्रमेय, गुणातीत, अनामय, साम्ब, हर, ईशान, ईश, कपर्दी, त्रिलोचन, शम्भु, एकादश रूद्र (अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, सुरेश्वर, जयन्त, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वैवस्वत, सावित्र और हर)[32], डिंडिम, महादेव, देवाधिदेव, स्वयंभू, विश्वाधिक, विश्वमय, शङ्कर, वरेण्य, विश्वान्तर्यामी, विश्वमय, विश्वोत्तीर्ण, महेश, चिच्छक्तिविशिष्ट,

ज्ञानगुह्य, माहेश्वर, उमासहाय, परमेश्वर, प्रभु, त्रिलोचन, नीलकण्ठ, प्रशान्त, भूतयोनि, समस्तसाक्षि, विकारातीत, त्रिपुरारि, शम्भु, भोला एवं औढरदानी है । [33]

▪ शिव नाम का महत्त्व

शिव नाम शैवों के लिए अत्यधिक पवित्र है । तदनुसार जो मनुष्य अज्ञानवश भी शिव शब्द स्वीकार करता है, वह किसी भी काल में भयङ्कर पापों से मुक्त हो जाता है । जो भक्तिपूर्वक शिव-शिव नाम का प्रलाप करता है, उसके लिए वज्र पुष्प बन जाता है तथा अग्नि हिमशिला बन जाती है । जलनिधि समुद्र पृथ्वी, शत्रु मित्र तथा विष भी अमृत हो जाता है । जिस वाणी में शिव इस प्रकार का परम मङ्गल नाम रहता है, उसके सात जन्मों में किए हुए पाप भस्मसात् होते है –

"योऽज्ञानाद् वा शिवशब्दं गृह्यान: ।

पापैर्घोरैर्मुच्यते, वा कदाचित् ॥

कुलिशं कुसुमति दहनस्तुहिनति वारांनिधिर्ध्रुवं स्थलति।

शत्रुर्मित्रति विषमप्यमृतति, शिव शिवेति प्रलपतो भक्त्या ॥

शिवेति मङ्गलं नाम, यस्य वाचि प्रवर्तते ।

सप्तजन्मकृतं पापं, भस्मीभवति तस्य वै ॥"[34]

▪ आभासवाद एवं अविकृत परिणामवाद

यद्यपि स्थूल दृष्टि से पृथिवी आदि अचेतन (जड़) है, जीवात्म अल्पज्ञ है एवं परमात्मा सर्वज्ञ है, अत: इनकी एकरूपता नही हो सकती है किन्तु सूक्ष्मतया यह चराचर शिव से उद्भूत है अत: इन सम्पूर्ण तत्त्वों में अभेदात्मक स्थिति ही है, जिस प्रकार मिट्टी से उत्पन्न कुम्भादि मिट्टी से भिन्न नही होते हैं । समुद्र से उत्पन्न फेन समुद्र से भिन्न नही होते अथवा तन्तु से उत्पन्न तन्तु से भिन्न नही होते, उसी प्रकार शिव से आविर्भूत यह चराचर जगत् उनसे अभिन्न ही है । इतने महत्त्वपूर्ण तथ्यों के अतिरिक्त हमें परब्रह्म शिव में सम्पूर्ण विश्व का आभास ही होता है । जिस प्रकार रज्जु में सर्प का, शुक्तिका में रजत् का, स्थाणु में मनुष्य का, आकाश में गन्धर्वनगर का एवं रेत (मरीचि) में जल का आभास होता है, उसी प्रकार सच्चिदानन्दलक्षण अभेदात्मक शिव में विश्व आभासित होने लगता है ।[35] यह प्रक्रिया **"आभासवाद"** के

अभिधान से अभिहित होती है । वीर शैव दर्शन शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन है अत: वह सृष्टि-प्रक्रिया के लिए **"अविकृत परिणामवाद"** को स्वीकार करता है । तदनुसार यह सृष्टि परशिव की शक्ति का विकास (सृष्टि) एवं सङ्कोच (प्रलय) रूप है । शिव-शक्ति की अभिन्नता चन्द्र-चन्दिका इव होती है, अत: शक्ति के विकास या सङ्कोच से परशिव ब्रह्म में किसी प्रकार की विकृति नही आती है । सम्पूर्ण जगत् परमशक्ति के विकास का परिणाम है एवं वह विकसित सृष्टि शक्तिविशिष्ट-परशिव का परिणाम है । अविकारी परम शिव के द्वारा सृष्टि एवं संहार होने के कारण उसे अविकृत परिणामवाद कहते है ।[36] परब्रह्म के अक्षरब्रह्म का सृष्टि-क्रम इस प्रकार है[37] -

क्रम	मंत्र	पञ्चब्रहम	लिङ्-पञ्चक	कला (शक्ति)	पञ्चभूत	विषय	देवता	शक्ति	अङ्ग-स्थल
१	य	ईशान	प्रसाद	परा	आका-श	शब्द	सदाशि-व	व्यापिनी	शरण
२	वा	तत्पुरूष	चर	आदि	वायु	स्पर्श	ईश्वर	स्पन्दन	प्राण-लिङ्गी
३	शि	अघोर	शिव	इच्छा	अग्नि	तेज	रूद्र	ज्वलन	प्रसादी
४	म:	वामदेव	गुरू	ज्ञान	जल	रस	विष्णु	आप्याय-न	माहेश्व-र
५	न	सद्योजात	आचा-र	क्रिया	पृथ्वी	गन्ध	ब्रह्मा	धृति	भक्त
६	ऊँ	परब्रह्म	महा-लिङ्ग	शान्त्य-तीतोत र		नि:-विष-य		चित्-शक्ति	ऐक्य

- **<u>पञ्चकृत्य</u>**

पञ्चब्रह्मस्वरूप परशिव स्वयं पञ्चकृत्यों के लिए अधिकृत है । उन पञ्चकृत्यों का स्वरूप निम्नलिखित हैं-

(क) **सृष्टि** – शिव महापुराण के विद्येश्वर संहिता के दसवें अध्याय के अनुसार संसार के आरम्भ का नाम सृष्टि (सर्ग) है । परशिवलिङ्ग के सद्योजात (आचारलिङ्ग) मुख के द्वारा चतुर्मुख ब्रह्मदेव को सृष्टि कर्म के लिए अधिकृत किया जाता है – **"सद्योजाताऽपरनामकाचारलिङ्गेन चतुर्मुखस्य सृष्टिकर्मणि नियमितत्वात् ।"**[38]

(ख) **स्थिति** – शिव महापुराण के विद्येश्वर संहिता के दसवें अध्याय के अनुसार संसार के स्थापन का नाम स्थिति है । परशिवलिङ्ग के वामदेव (गुरूलिङ्ग) मुख के द्वारा चतुर्भुज नारायण को स्थिति कर्म के लिए अधिकृत किया जाता है – **"वामदेवेन गुरूलिङ्गेन विष्णो: स्थितिकर्मणि नियमितत्वात् ।"**[39]

(ग) **संहार** – शिव महापुराण के विद्येश्वर संहिता के दसवें अध्याय के अनुसार संसार के विनाश का नाम संहार है । परशिवलिङ्ग के अघोर (शिवलिङ्ग) मुख के द्वारा कालरूद्र को संहार कर्म के लिए अधिकृत किया जाता है – **"अघोरेण शिवलिङ्गेन कालरूद्रस्य संहारकर्मणि नियमितत्वात् ।"**[40]

(घ) **नियमन** – शिव महापुराण के विद्येश्वर संहिता के दसवें अध्याय के अनुसार संसार के परिवर्तन का नाम तिरोधान है । परशिवलिङ्ग के तत्पुरूष (चरलिङ्ग) मुख के द्वारा ईश्वर को नियमन कर्म के लिए अधिकृत किया जाता है – **"तत्पुरूषेण चरलिङ्गेन ईश्वरस्य नियमनकर्मणि नियुक्तत्वात् ।"**[41]

(ङ) **अनुग्रह** – शिव महापुराण के विद्येश्वर संहिता के दसवें अध्याय के अनुसार संसार के सर्गादि से मुक्ति ही अनुग्रह है । परशिवलिङ्ग के ईशान (प्रसादलिङ्ग) मुख के द्वारा सदाशिव को अनुग्रहात्मक कर्म के लिए अधिकृत किया जाता है – **"ईशानेन प्रसादलिङ्गेन सदाशिवस्य अनुग्रहात्मकबन्धमोचनकर्मणि नियुक्तत्वात् ।"**[42]

फलत: परब्रह्म शिव ही अपने विभिन्न रूपों में आविर्भूत होकर यथाक्रम पृथक्-पृथक् पञ्चकृत्यों का सम्पादन करता है । वह ब्रह्मा, विष्णु तथा रूद्र सभी देवताओं का जनक है एवं उनके द्वारा उपास्य भी है-

"पञ्चकृत्यनियन्तारं पञ्चब्रह्मात्मकं बृहत् ।

ब्रह्मविष्ण्वादिभि: सेव्यं सर्वेषां जनकं परम् ॥"[43]

समस्त विश्व परम शिव का ही रूप है । द्युलोक उसका सिर, चन्द्र और सूर्य उसके दोनों नेत्र, पूर्वादि दिशाएँ उसके कर्ण, वेद उसकी वैखरी वाणी, महावायु उसके विश्व-शरीर में अन्त:सञ्चार करने वाला प्राणवायु, चराचर विश्व उसका हृदय, पृथिवी उसके दोनों पाद और स्वयं वह सर्वान्तर्यामी समस्त विश्व में उसी प्रकार अवस्थित रहता है, जिस प्रकार पाञ्चभौतिक स्थूल शरीर में उसी का अंशस्वरूप जीवात्मा ।[44]

▪ छत्तीस तत्त्वों में शक्तितत्त्व

(२) शक्ति – शक्ति के स्वरूप के विषय में सिद्धान्त-शिखामणि का कथन है **"तदीया परमा शक्ति सच्चिदानन्दलक्षणा । समस्तलोकनिर्माणसमवायस्वरूपिणी ॥"**[45] एवं **"गुणत्रयात्मिका शक्ति: ब्रह्मनिष्ठा सनातनी ॥"**[46] इस प्रकार शक्ति का द्विविध स्वरूप वर्णित है । यद्यपि शक्ति एक ही है किन्तु इसकी दो अवस्थाएँ हैं – अविभागापरामर्शाख्या तथा विभागापरामर्शाख्या । अविभागापरामर्श अवस्था में यह शक्ति परशिववत्, सच्चिदानन्दस्वरूपा (तद्बोधरूपा) होती है । सच्चिदानन्द स्वकीय परशिव की जो त्रिगुणात्मिका शक्ति है, वह विभागपरामर्शाख्या शक्ति है । इसी शक्ति का अपर अभिधान चिच्छक्ति और विमर्शशक्ति है ।[47] वीर शैव सिद्धान्त के मतानुसार विमर्शशक्ति जगत् के उत्पत्ति काल में इच्छाज्ञानादि के रूप में विभागपरामर्श दशा को प्राप्त होती है तथा सत्वादित्रिगुणात्मिका होने के कारण माया हो जाती है । इस प्रकार सच्चिदानन्दरूपविमर्शशक्तिविशिष्ट परशिव निर्गुण तथा त्रिगुणात्मकमायाशक्तिविशिष्ट शिव सगुण कहे जाते है । कहा भी गया है –

"विमर्शाख्या पराशक्तिर्विश्ववैचित्र्यकारिणी ।

यस्मिन् प्रतिष्ठिता ब्रह्म, तदिदं विश्वभाजनम् ॥

यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना, विश्ववस्तुप्रकाशिनी ।

तथा शक्तिर्विमर्शाख्या, प्रकाशे ब्रह्मणि स्थिरा ॥"[48]

"यथा घट इति ज्ञाने, घटत्वं स्यात् विशेषणम् ।

तथा ब्रह्मणि वैशिष्ट्यं, शक्तिरित्यभिधीयताम् ॥"[49]

परशिव की शक्ति अपने मूल स्वरूप में अक्रमावस्था में सर्वप्रथम मयूराण्डररसन्याय से सृष्टि को अपने आभ्यन्तर में अभिन्न रूप में धारण करती है । पश्चात् पत्र, पुष्प, शाखा एवं फल आदि के पृथक्-पृथक् होने पर भी यह एक ही वृक्ष है यह स्थिति होती है, उसी प्रकार यह अनेक विधात्मक विश्व को एक रूप में प्रकट करती है । तत्पश्चात् कछुये के द्वारा अपने अङ्गों की भाँति इस संसार का अपने आभ्यन्तर में संहरण भी कर लेती है ।

परशिव में यह निष्ठित शक्ति जगत् का उपादान कारण है । "शिवाद्वैत परिभाषा" के अनुसार भी **"उपादानत्वम्, अपृथक्सिद्धधर्मत्त्वं वा शक्तेर्लक्षणम्"**[50] यही सिद्ध होता है । "शिवाद्वैतमञ्जरी" के अनुसार भी शक्ति की उपादानता अवलोकित होती है- **"स्वेच्छाशक्तेर्बहिरङ्गरूपक्रियांशप्रविष्टोद्योग एव भाविविश्वोपादानकारणं शक्तितत्त्वं भवति ।"**[51] अर्थात् शिव की स्वाभाविकी शक्ति से बहिरङ्ग रूप में सृष्टि-क्रिया के लिए अंश रूप में उपस्थित, भविष्य के विश्व की उपादान कारणभूत सृष्ट्यादि-उद्योग में प्रविष्ट सत्ता शक्तितत्त्व पद से अभिहित होती है । इसी शक्ति का पुरूष भावात्मक विलास नारायण है ।

शक्ति के बिना शिव नाम धाम से रहित हो जाता है- **"शक्तया बिना शिवे सूक्ष्मे नाम धाम न विद्यते ।"**[52] शक्ति एवं शिव एक दूसरे के पूरक है । शक्ति के बिना न शिव का अस्तित्व है और शिव के बिना शक्ति का भी अस्तित्व नही है – **"न शिवेन बिना शक्तिर्न शक्तिरहित: शिव: ।"**[53] श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार शिव की शक्ति उन्हीं में विविध रूप में समाहित है –

"परास्य शक्तिर्विविधैव श्रुयते, स्वभाविकी ज्ञानबला क्रिया च ।"[54]

"ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्, देवात्मशक्ति: स्वगुणैर्निगूढाम् ।"[55]

परशिव में अवस्थित यह शक्ति षड्-विध है- चिच्छक्ति, पराशक्ति, आदिशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, एवं क्रियाशक्ति । श्रुति के अनुसार यदा परब्रह्मशिव इच्छा करते है, तदा वह शक्ति बहुविध प्रकटित होती है- **"स ऐक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति"**[56] **"स ईक्षां चक्रे"**[57] **"स ऐक्षत लोकानसृजत"**[58] **"यथापूर्वमकल्पयत्"**[59] । वातुलशुद्धाख्यतन्त्र के अनुसार चिच्छक्तिविशिष्ट परशिव से पञ्चशक्तियाँ क्रमश: एक के सहस्रांश से प्रादुर्भूत होती हैं –

"योगिनामुपकाराय, स्वेच्छया चिन्त्यते शिव: ।।

तच्छिवे तु पराशक्ति:, सहस्रांशेन जायते ।

तच्छक्तेस्तु सहस्रांशादिशक्तिसमुद्भव: ।।

आदिशक्तिसहस्रांशाद्, इच्छाशक्तिसमुद्भव: ।

इच्छाशक्तिसहस्रांशाद्, ज्ञानशक्तिसमुद्भव: ॥

ज्ञानशक्तिसहस्रांशाद्, क्रियाशक्तिसमुद्भव: ।

एता वै शक्तय: पञ्च निष्कलाश्चेति कीर्तित: ॥"[60]

शक्ति की विभिन्नता को निम्नलिखित तालिका से समझा जा सकता है-[61]

शक्ति	
कलाशक्ति	**भक्तिशक्ति**
चिच्छक्ति (शान्त्यातीतोत्तराकला)	समरसभक्ति
पराशक्ति (शान्त्यातीताकला)	आनन्दभक्ति
आदिशक्ति (शान्तिकला)	अनुभवभक्ति
इच्छाशक्ति (विद्याकला)	अवधानभक्ति

ज्ञानशक्ति (प्रतिष्ठाकला)	नैष्ठिकभक्ति
क्रियाशक्ति (निवृत्तिकला)	श्रद्धाभक्ति

ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य के मत में शक्ति विनियोग काल में शिव के प्रसाद से चतुर्विधा हो जाती है-

"शिवस्य शक्तिर्विनियोगकाले, चतुर्विधाभूयच्छिवसत्प्रसादात् ।

भोगे भवानी समरे च दुर्गा, क्रोधे च काली पुरूषेषु विष्णु: ॥"[62]

यह शक्ति सदाशिव से भूमि पर्यन्त सम्पूर्ण छत्तीस तत्त्वों की अभिव्यक्ति में समर्थ है । परशिव से अभिन्नात्मक इस शक्ति का जब प्रसार (उन्मेष) होता है, तब विश्व का भी प्रसार होता है । इस शक्ति का प्रसार जब अवरूद्ध हो जाता है तो सम्पूर्ण विश्व का निमेष हो जाता है ।

(3) सदाशिव- "अथैवंविधशक्तितत्त्वमेव स्वेच्छाशक्त्यन्तरङ्गभूतज्ञानशक्त्युद्रेकावस्थाप्रविष्टं सद् जलाधिवासितचणकादिवत् पूर्वावस्थावैलक्षण्येनाङ्कुरायमाणेदन्ताप्रथनरूपं गर्भावरकवत् स्वाहन्तयाऽऽच्छाद्य वर्तमानविश्वस्फुरणरूपं सादाख्यरूद्रतत्त्वं (सदाशिवांशीभूतम्) भवति ।"[63]

यही शक्तितत्त्व अपनी इच्छाशक्ति के अन्तरङ्ग स्वरूप ज्ञानशक्ति में प्रकट अवस्था में जब प्रविष्ट होता है, तो उस समय जल में भिगोये चने के बीज के समान पूर्व अवस्था से विलक्षण अङ्कुरोन्मुख अवस्था में प्रविष्ट होकर, इदन्ता रूपी अवस्था को गर्भावस्था के समान अपनी अहन्ता से आच्छादित कर वर्तमान विश्व का गर्भावस्था के समान अपनी अहन्ता से आच्छादित कर वर्तमान विश्व का स्फुरण कराने के लिये सादाख्य रूद्रतत्त्व (सदाशिव तत्त्व) हो जाता है । यह सदाशिव तत्त्व सकल-निष्कलात्मक होता है ।[64] ध्यातव्य है कि सदाशिव से पृथ्वी पर्यन्त चौतीस तत्त्वों की परिभाषा "शिवाद्वैतमञ्जरी" में भी वर्णित है ।[65]

"वातुलशुद्धाख्य-तन्त्र" के अनुसार योगियों, यतियों, ज्ञानियों और मन्त्रशास्त्र के ज्ञाताओं के ध्यान और पूजा (आन्तर एवं बाह्य उपासना) की सिद्धि के लिए निष्कल तत्त्व सकल का रूप धारण कर लेता है । यह सकल स्वरूप ही सादाख्य तत्त्व (सदाशिव) कहलाता है । निरन्तर शिवभाव की स्थिति रहने के कारण इसका नाम सादाख्य है ।[66] इसका समुद्भव पराशक्ति तथा आदिशक्ति से होता है ।[67] इसके पञ्चभेद है- शिवसादाख्य (सदाशिव), अमूर्तसादाख्य (ईश), मूर्तसादाख्य (ब्रह्मेश), कर्तृसादाख्य (ईश्वर) एवं कर्मसादाख्य (ईशान) ।[68] इनका संक्षिप्त स्वरूप निम्नलिखित है-

(क) शिवसादाख्य (सदाशिव) :- पराशक्ति (शान्त्यातीता) के दशांश से शिवसादाख्य तत्त्व प्रादुर्भूत होता है। यह सूक्ष्मरूप एवं ज्योतिरूप है। आकाश में विद्युत् इव सर्वत्र प्रत्यक्ष रूप से भासमान तथा समस्त तत्त्वों का आलय है।[69]

(ख) अमूर्तसादाख्य (ईश) :- आदिशक्ति (शान्ति) के दशांश से अमूर्तसादाख्य तत्त्व का समुद्भव होता है। यह कलारहित, सूर्य के सदृश प्रकाशमान, लिङ्गतत्त्व के समान तथा ज्योतिस्तम्भस्वरूप है।[70]

(ग) मूर्तसादाख्य (ब्रह्मेश) :- इच्छाशक्ति (विद्या) के दशांश से मूर्तसादाख्य तत्त्व प्रकटित होता है। इच्छाशक्ति के गुणों के कारण इसको मूर्त कहते है। कला एवं रूप से संयुक्त यह एक मुख से सुशोभित, दिव्य लिङ्ग जैसी आकृति वाला तत्त्व मूर्त सादाख्य कहलाता है।[71]

(घ) कर्तृसादाख्य (ईश्वर) :- ज्ञानशक्ति (प्रतिष्ठा कला) के दशांश से कर्तृसादाख्य तत्त्व की उत्पत्ति होती है। ज्ञानशक्ति का अधिकरण होने के कारण इसको कर्तृसादाख्य तत्त्व नाम दिया गया है। सभी शोभन अवयवों से तथा सभी प्रकार के आभरणों से सुशोभित यह ईश्वर लिङ्ग कर्तृसादाख्य के नाम से प्रसिद्ध है।[72]

(ङ) कर्मसादाख्य (ईशान) :- क्रियाशक्ति (निवृत्ति कला) के दशांश से कर्मसादाख्य तत्त्व का प्रकटीकरण होता है। शिव तत्त्व पर आश्रित शिव सादाख्य तत्त्व होता है। शिवसादाख्य तत्त्व पर अमूर्तसादाख्य तत्त्व तथा अमूर्तसादाख्य पर मूर्तसादाख्य तत्त्व आश्रित होता है। मूर्तसादाख्य तत्त्व पर कर्तृसादाख्य तत्त्व तथा कर्तृसादाख्य तत्त्व पर कर्मसादाख्य तत्त्व आश्रित होता है। अत: पञ्चतत्त्वात्मक कर्मसादाख्य तत्त्व सभी तत्त्वों का आधार माना गया है। इसको पिण्डकाय भी कहते है। पाँचों सादाख्य तत्त्वों के रूप में विद्यमान यह पिण्ड पञ्चतत्त्वों का स्वरूप धारण करता है। इन विभिन्न देहों को धारण करने से गुणभेद के आधार पर यह पञ्चानन (पञ्चब्रह्मस्वरूप) हो जाता है।[73] इसी पञ्चमुखवाले देह से महेशादि (ईश्वरादि) की सृष्टि होती है। उन पञ्चमुखों के सगुण स्वरूप का वर्णन निम्नलिखित है –

▪ <u>पञ्चमुख</u>

(अ) सद्योजात-स्वरूप :– शिव के पञ्चमुखों में प्रथम मुख के रूप में सद्योजात-स्वरूप की गणना की जाती है। यह गोक्षीर और शङ्ख के समान श्वेत वर्ण, जटामुकुटालङ्कृत, चतुर्मुख, चतुर्बाहु, द्वादश नेत्र से संयुक्त तथा सर्वाभरण से संयुक्त हैं।[74]

(ब) वामदेव-स्वरूप :– यह शिव का द्वितीय मुख वामदेव-स्वरूप है। जपापुष्प के सदृश रक्तवर्ण वाला, जटामुकुटालङ्कृत, चतुर्मुख, चतुर्बाहु, द्वादशनेत्रसंयुक्त, सर्वाङ्ग-सुन्दर, रक्तवस्त्रधारी, दक्षिण हस्त में टङ्क एवं अभय तथा वाम हस्त में वरमुद्रा तथा शूल धारी, लालचन्दन से लिप्त शरीर वाला एवं लाल पुष्पों की माला धारण किया हुआ वामदेव का स्वरूप है।[75]

(स) अघोर-स्वरूप :– तृतीय मुख के रूप में अघोर-स्वरूप का वर्णन किया गया है। इनका स्वरूप घने काजल के समान भयङ्कर, जटामुकुटालङ्कृत, चतुर्मुख, चतुर्बाहु, द्वादश नेत्र से संयुक्त, लम्बी डाढ़ों वाला, व्याघ्र चर्म वस्त्रधारी, यज्ञोपवीतधारी, पादनुपुरालङ्कृत, सर्वाभरणभूषित, दिव्यगन्ध से तथा दिव्य पुष्प से अलङ्कृत, दक्षिण हस्त में टङ्क तथा शूल एवं वाम हस्त में वर एवं अभय मुद्रा से सुशोभित, सर्वाङ्ग सुन्दर तथा सर्वशुभ लक्षणों से सम्पन्न है।[76]

(द) तत्पुरूष-स्वरूप :- चतुर्थ मुख के रूप में तत्पुरूष-स्वरूप वर्णित है। तत्पुरूष का स्वरूप कुंकुम के सदृश पीतवर्ण का है। जटामुकुटालङ्कृत, चतुर्मुख, चतुर्बाहु, द्वादश नेत्र से संयुक्त, सर्वाङ्गसुन्दर, पीताम्बरधारी, सर्वाभरणभूषित, दक्षिण हस्त में टङ्क एवं अभय मुद्रा से तथा वाम हस्त में शूल एवं वादमुद्रा, दिव्यगन्ध एवं दिव्यपुष्पों से इनका स्वरूप सुशोभित है।[77]

(य) ईशान-स्वरूप :- पञ्चम मुख के रूप में ईशान-स्वरूप का वर्णन किया गया है। यह मूर्ति स्फटिक के सदृश श्वेत वर्ण, जटामुकुटालङ्कृत, चतुर्मुख, चतुर्बाहु, द्वादश नेत्र से संयुक्त, चारों हाथों में टङ्क, शूल, वर तथा अभयमुद्रा से सुशोभित है। यह भी दिव्यगन्ध एवं दिव्यपुष्पों से सुवासित है।[78]

इनमें अघोर का स्वरूप भयावह एवं शेष सभी सौम्यात्मक हैं। सद्योजात मूर्तसादाख्य, वामदेव अमूर्तसादाख्य, अघोर कर्तृसादाख्य, तत्पुरूष कर्मसादाख्य तथा ईशान शिवसादाख्य है।

- **<u>छत्तीस तत्त्वों में ईश्वर, सद्विद्या एवं माया - तत्त्व</u>**

(४) ईश्वर - "अथ तच्छक्तितत्त्वमेव स्वक्रियाशक्त्युद्रेकदशायां प्रविष्टं सत् कृतवस्तुवदङ्कुरितमिदन्तारूपं स्वाहन्तयाच्छाद्य स्थितविश्वस्फूर्तिमयमीश्वरतत्त्वं भवति।"[79]

वही शक्तितत्त्व अपनी क्रियाशक्ति से प्रकट अवस्था में आने पर निर्मित वस्तु के रूप में अङ्कुरित बीज के समान, अपने इदन्ता रूप को अपनी अहन्ता से आच्छादित कर वर्तमान विश्व का स्फुरण कराने वाला ईश्वर तत्त्व बन जाता है। यह ईश्वरतत्त्व (महेश तत्त्व) सकल रूप में जाना जाता है।[80] यह तत्त्व शक्तितत्त्व का पुरूष भावात्मक रूप होता है तथा यह लीला स्वरूप नारायणादि नाम से प्रचलित है।[81]

(५) सद्विद्या – "अथ क्रियाप्रधानेदन्तायाः संविद्रूपाहन्ताऽन्तर्गतत्वेन भासमानत्वाद् विभागनिबन्धनभेदघटितसागरतरङ्गन्यायेनाहन्तेदन्तयोरैक्यप्रतिपत्तिर्ब्रह्मापरपर्यायशुद्धविद्यातत्त्वं भवति।"[82]

वही शक्तितत्त्व क्रियाशक्ति-प्रधान इदन्ता के संवित्स्वरूप अहन्ता के अन्तर्गत भासित होने पर विभागावस्था की कारणस्वरूप भेददशा के व्यक्त हो जाने पर सागर-तरङ्ग न्याय से अहन्ता और इदन्ता में जब एकात्मकता की प्रतिपत्ति होने लगती है, तो यही स्थिति

शुद्धविद्या तत्त्व के नाम से जानी जाती है। यह तत्त्व ब्रह्म का अपर पर्याय भूत है तथा गुरू के द्वारा प्राप्त निर्मल संवित्ति तक ही शुद्धविद्या रहती है।[83]

यहाँ तक पञ्च शुद्ध तत्त्व हैं।

(६) माया – "शुद्धविद्यातत्त्वमेवाण्डरसन्यायेन स्वान्तर्लीनेषु भवनक्रियोन्मुखेषु भावेष्वन्योन्याभावनिबन्धनभेदबुद्धिप्रधानं सद् मायातत्त्वं भवति"।[84]

यह शुद्धविद्या तत्त्व ही अण्डरसन्याय से अपने अन्तर्गत क्रियोन्मुख होते हुए भावों में लीन परस्पर पृथक्-पृथक् रूप में निबन्धित भावों की प्रधान भेद बुद्धि के कारण होने से माया तत्त्व पद से अभिहित होता है। इसकी शब्द की निरूक्ति के आधार पर कहा गया है कि जो मं (म् = परब्रह्मरूपीशिव एवं अम् = जाना) रूपी परब्रह्मशिव को स्वभावत: प्राप्त कर लेती है, उस ब्रह्मनिष्ठ सनातन शक्ति का नाम लोक में माया है -

"मं शिवं परमं ब्रह्म, प्राप्नोति स्वभावत:।

मायेति प्रोच्यते लोके, ब्रह्मनिष्ठा सनातनी॥"[85]

श्वेताश्वतरोपनिषद् के वचनानुसार माया को प्रकृति तथा मायी को महेश्वर जानना चाहिये एवं इन दोनों का अवयवी भूत ही यह सम्पूर्ण संसार है -

"मायां तु प्रकृति विद्यात्, मायिनं तु महेश्वरम्।

तस्याऽवयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥"[86]

- **<u>पञ्चकञ्चुक</u>**

कञ्चुक :- "शङ्करशासनादपरिच्छिन्नस्वस्वरूपावरणहेतुत्वात् कञ्चुकमित्यागमेषूच्यते।"[87]

परब्रह्मशिव के शासन से पुरूष के अपरिच्छिन्न स्वरूप को आवृत्त करने के कारण ही इनका नाम आगमों में कञ्चुक रखा गया है। ये पञ्च हैं -

(७) कला - "अस्य पुरूषस्य महेश्वराद् विभक्तत्वेन मायापहृतैश्वर्यत्वात् असङ्कुचिततत्कर्तृताशक्तिरेव किञ्चित्कर्तृतालक्षणकलातत्त्वं भवति।"[88]

इस पुरूष (संसारी या जीव) का महेश्वर से विभाग कराने के कारण तथा माया के द्वारा इसके ऐश्वर्य का हरण कराने के फलस्वरूप वह असङ्कुचित पुरूष की कर्तृता शक्ति ही किञ्चित्कर्तृता शक्ति (लक्षणात्मिका) कला शक्ति तत्त्व कहलाती है। इस प्रकार पुरूष की सर्वकर्तृता शक्ति किञ्चित्कर्तृताशक्ति में परिणत हो जाती हैं।

(८) विद्या – "ज्ञातृताशक्तिरेव किञ्चिज्ज्ञत्वलक्षणविद्यातत्त्वं भवति ।"[89]

पुन: पुरूष की ज्ञातृता शक्ति ही स्वयं को किञ्चित्ज्ञातृता में परिणत करने के कारण विद्या तत्त्व कहलाती है । फलत: पुरूष सर्वज्ञ से किञ्चित् जानने वाला हो जाता है ।

(९) राग – "पूर्णताशक्तिरेवापूर्णतां प्राप्य स्रक्चन्दनवनितादिविषयासक्तिलक्षणं रागतत्त्वं भवति ।"[90]

पूर्णता शक्ति ही अपूर्णता को प्राप्त करके स्रक्, चन्दन तथा वनिता आदि विषयों में पुरूष को आसक्त करने के कारण राग तत्त्व रूप कञ्चुक हो जाती है । फलत: पुरूष अपनी पूर्णता को विस्मृत कर विषयों की ओर आकृष्ट होने के कारण अपूर्ण हो जाता है ।

(१०) काल – "नित्यता ह्यनित्यतां प्राप्य भूतभविष्यद्वर्तमानरूपक्रमाकरकालतत्त्वं भवति ।"[91]

नित्यता तथा अनित्यता को प्राप्त करके भूत, भविष्यद् एवं वर्तमान रूप के क्रम में नियोजित करनेवाला काल तत्त्व रूप कञ्चुक कहलाता है । परिणामत: नित्य पुरूष अनित्यता की श्रेणी में काल तत्त्व नामधेय कञ्चुक के कारण ही प्रवेश करता है ।

(११) नियति - "व्यापकता ह्यव्यापकता प्राप्य मयेदं कर्त्तव्यमिति नियमहेतुभूतनियतितत्त्वं भवति ।"[92]

व्यापकता तथा अव्यापकता को प्राप्त कर के पुरूष "यह मेरा कर्त्तव्य है" ऐसी प्रतीति करने लगता है । इस नियम की कारण भूत नियति तत्त्व नामक कञ्चुक होता है । नियति तत्त्व रूप कञ्चुक के कारण ही पुरूष की व्यापकता सङ्कुचित होकर अव्यापकता को प्राप्त होती है ।

▪ छत्तीस तत्त्वों में पुरूष-तत्त्व

(१२) पुरूष - "आणवकार्ममायीयबैन्दवरोधशक्त्यात्मकपाशपञ्चकबद्धसंसारी पुरूष: ।"[93]

आणव, कार्म, मायीय, बैन्दव तथा रोध शक्त्यात्मक पञ्चपाशों से आबद्ध होने के कारण वह सत्ता संसारी या पुरूष कहलाती है । ध्यातव्य है कि सिद्धान्त शैवों के उपर्युक्त पञ्चपाश ही वीर शैवों के त्रिविध मलों के अन्तर्गत आ जाते हैं । तदनुसार बैन्दव शक्ति का मायीय एवं रोध शक्ति का कार्म मल में अन्तर्भाव हो जाता है । परमेश्वर के द्वारा अपने अन्तर्गत लीन चराचरों से पुरूष का आविर्भाव होता है । तदनुसार पञ्चकञ्चुकों से आच्छादित आत्मा उसी प्रकार विभक्त हो जाता है, जैसे अग्नि और काष्ठ के योग से चिन्गारियाँ निकलती है, । माया शक्ति के अधीन वह प्रकाश यदा प्रतिबिम्ब के रूप में प्रविष्ट होता है, तो वह पुरूष तत्त्व कहलाता है । माया शक्ति से आक्रान्त होने के कारण यह प्रकाश परतन्त्र हो जाता है क्योंकि वह महेश्वर से विलक्षण स्वरूप का हो जाता है । विष्णुसहस्रनाम के शाङ्करभाष्यानुसार पुरूष का निर्वचन इस प्रकार है – **"सर्वस्मात् पुरा सादनात् सर्वपापस्य सादनात् वा पुरूष: ।**

शयनाद् वा पुरूष: ।"[94] कैवल्योपनिषद् (मन्त्र २०) में पुरूष शब्द का सदाशिव भाष्य इस प्रकार है – **"पुरि शरीरे पुरीतति नाड्यां वा शयनाद् पुरूष: आत्मेष्टलिङ्गरूपशिव:, समस्तचेतनाचेतनप्राणिदेहान्तर्वर्ति पुरूषशब्दवाच्य: शिवलिङ्गरूप: परमेश्वर इत्यर्थ: ।"**[95] अर्थात् पाशमुक्त तथा मल से रहित पुरूष साक्षात् शिव ही कहा गया है । **"चितिसङ्कोचचित्तविशिष्टो जीव:"**[96] के अनुसार चिच्छक्ति के सङ्कोच के कारण सङ्कुचित चित्त से विशिष्ट तत्त्व जीव कहलाता है । ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य के मत में पुरूष षोडश कला का द्रष्टा है – **"एष हि द्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरूष: । एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमा: षोडश कला: ।"**[97] तदनुसार सुख दु:खादि के भोक्तृत्व का हेतु है – **"पुरूष: सुखदुखानां भोक्तृत्वे हेतुरूच्यते ।"**[98] पुरूष को वीर शैव के अन्तर्गत अङ्ग नाम भी दिया गया है –

"अमिति ब्रह्म सन्मात्रं गच्छतीति गमुच्यते ।

रूप्यतेऽङ्गमिति प्राज्ञैरङ्गतत्त्वविचिन्तकै: ॥"[99]

"अं" का अर्थ है परब्रह्म शिव और उसकी प्राप्ति का इच्छुक जीव अङ्ग कहलाता है । वीर शैव मत में स्थल परब्रह्म का वाचक है ।[100] इस प्रकार अङ्ग-स्थल के भी त्रिविध भेद होते हैं :–

- <u>त्रिविध शरीर</u>

(१) **योगाङ्ग-स्थल :-** यह परब्रह्म शिव और जीव के मध्य योग का सबसे महत्त्वपूर्ण शरीर माना जाता है, अत: इसका नाम योगाङ्ग है । जीव का मायावृत प्राथमिक शरीर कारण शरीर होता है । अनुभव सूत्र के अनुसार यह शरीर कारण शरीर, सुषुप्त्यावस्था, आनन्द द्रव्य तथा प्राज्ञ का बोधक है ।

(२) **भोगाङ्ग-स्थल :-** जीव का पञ्चकञ्चुकावृत शरीर भोगाङ्ग है । इस शरीर में भोग करने की इच्छाएँ अवशिष्ट रह जाती हैं, अत: इसको भोगाङ्ग कहा गया है । अनुभव सूत्र के अनुसार यह शरीर सूक्ष्म शरीर, स्वप्नावस्था, प्रविविक्त द्रव्य तथा तैजस् का बोधक है ।

(३) **त्यागाङ्ग-स्थल :-** जीव का पाञ्चभौतिक शरीर त्यागाङ्ग होता है, क्योंकि उसका त्याग करना पड़ता है । यह त्याग के योग्य होता है, अत: इसको त्यागाङ्ग कहते है । अनुभव सूत्र के अनुसार यह शरीर स्थूल शरीर, जाग्रतावस्था, स्थूल द्रव्य तथा विश्व का बोधक है । जैसा कि कहा गया है –

"योगाङ्गं कारणं प्रोक्तं भोगाङ्गं सूक्ष्मुच्यते ।
त्यागाङ्गं स्थूलमित्युक्तमेवं भेदोपभेदत: ॥
सुषुप्त्यवस्था योगाङ्गं भोगाङ्गं स्वापनाभिधा ।

जाग्रदित्युदितास्था त्यागाङ्गमिति कथ्यते ॥
योगाङ्गं प्राज्ञ एव स्याद् भोगाङ्गं तैजसो भवेत् ।
त्यागाङ्गं विश्व एव स्याद् परमार्थनिरूपणे ॥"[101]

पुरूष की अन्य परिभाषाओं में उसे वीर शैव मतान्तर्गत लिङ्ग से भी संयुक्त किया गया है, क्योंकि लिङ्ग परब्रह्मशिव का अपर अभिधान है । तदनुसार **"पुर्षु (नगरेषु) स्थूल-सूक्ष्म-कारणशरीरेषु इष्ट-प्राण-भावलिङ्गरूपेण शेते तिष्ठतीति पुरूष: ।"**[102] समस्त प्राणियों के अन्त:करण में स्थित आत्मा भी मल से संसक्त होने के कारण आदि अर्थात् प्राचीनतम कर्म से नियन्त्रित होता हुआ अणु बनकर रहता है –

"आत्मापि सर्वभूतानामन्त:करणमाश्रित: ।

अणुभूतो मलासङ्गादादिकर्मनियन्त्रित: ॥"[103]

बाल के अग्रभाग के सौवें भाग के सदृश वह जीव हृदय में स्थित होता हुआ कर्मफल का भोग न करता हुआ दीपक के समान प्रकाशित होता रहता है और प्रकाशित करता है ।[104] जिस प्रकार घटरूप उपाधि से युक्त आकाश स्वरूपत: परिपूर्ण होता है, उसी प्रकार शरीर में स्थित आत्मा परिपूर्ण होकर प्रकाशित होता है ।[105]

त्रिविध मलों के श्रृङ्खला के द्वारा आबद्ध होने के कारण पुरूष का अपर नाम संसारी भी है । जैसा कि कहा गया है -

"स्वान्तर्लीनचराचरात् परमेश्वरात् काष्ठयोगेन वह्नेर्विस्फुलिङ्गाविर्भावात् तदिच्छाशक्तिवशात् विभक्त: सन् उक्तलक्षणमायाशक्तौ प्रतिबिम्बगत्या प्रविष्टो य: प्रकाश:, स पुरूषतत्त्वं भवति । मलत्रयश्रृङ्खलित्वादेव संसारीत्युच्यते ।"[106]

▪ त्रिविध मल

वें त्रिविध मल हैं- आणव, कार्म एवं मायीय । जिनका संक्षिप्त स्वरूप निम्नलिखित है –

(क) कार्म मल :- क्रियाशक्ति की सङ्कुचित अवस्था का नाम कार्म मल है । कहा भी गया है –

"क्रियाशक्ते: क्रमेण भेदे सर्वकर्तृत्वस्य किञ्चित्कर्तृत्वाप्ते: कर्मेन्द्रियरूपसङ्कोचग्रहणपूर्वमत्यन्तं परिमिततां प्राप्तं शुभाशुभानुष्ठानमयं कार्ममलम् ।"[107] अर्थात् क्रियाशक्ति में सङ्कोच होने के कारण सर्वकर्तृत्व-शक्ति किञ्चित्कर्तृत्व-शक्ति के रूप में परिणत हो जाती है । तदुपरान्त वह कर्मेन्द्रियों के रूप में सङ्कुचित होकर अत्यन्त परिमित स्थिति में पहुँच जाती है । यह सङ्कोच शुभ और अशुभ कर्मों में प्रवृत्त कराने के कारण कार्म मल अभिधान से जाना जाता है ।

(ख) आणव मल :- इच्छाशक्ति की सङ्कुचित अवस्था का नाम आणव मल है। कहा भी गया है –

"अप्रतिहतस्वातन्त्र्यरूपा इच्छाशक्ति: सङ्कुचिता सती अपूर्णम्मन्यतारूपमाणवमलम् ।"[108] अर्थात् इच्छाशक्ति की स्वतन्त्रता सदा अवबाधित रहती है, किन्तु उसमें जब सङ्कोच का अवभास होने लगता है। तत्पश्चात् वह सङ्कुचित जीवात्मा स्वयं को अपूर्ण मानने लगता है। यह स्थिति आणव मल के अभिधान से जानी जाती है।

(ग) मायीय मल :- ज्ञानशक्ति की सङ्कुचित अवस्था का नाम मायीय मल है। कहा गया है –

"ज्ञानशक्ते: क्रमेण सङ्कोचाद् भेदे सर्वज्ञत्वस्य किञ्चिज्ञत्वापेरन्त:करणबुद्धीन्द्रियतापत्तिपूर्वमत्यन्तसङ्कोचग्रहणेन भिन्नवेद्यप्रथारूपं मायीय मलम् ।"[109] अर्थात् ज्ञानशक्ति के सङ्कोच के क्रम में भेद-ज्ञान उपस्थित होने से एवं सर्वज्ञता का सङ्कोच के क्रम में भेद-ज्ञान के प्रकट हो जाने से (सर्वज्ञता का सङ्कोच हो जाने पर) त्रिविध अन्त:करण और पञ्चविध ज्ञानेन्द्रियों के रूप में जीव में अल्पज्ञता प्रवेश कर जाती है। इसके कारण यह जो भेद-बुद्धि पैदा होती है, उसे मायीय मल कहा जाता है।

त्रिविध मलों से आबद्ध संसारी या पुरूष त्रिविध दु:खों आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक से ग्रस्त होकर विषयासक्त होने लगता है। इनमें प्रथम आध्यात्मिक दु:ख बाह्य एवं आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का कहा गया है। जिनमें वात, पित्त एवं श्लेष्मा आदि से उत्पन्न दु:ख बाह्य आध्यात्मिक दु:ख एवं राग-द्वेषादि से प्राप्त दु:ख आभ्यन्तर आध्यात्मिक दु:ख कहा जाता है। ग्रह तथा यक्षादि से उत्पन्न दु:ख आधिदैविक है। जो दु:ख राजा आदि के कारण उत्पन्न हो वह आधिभौतिक दु:ख कहा जाता है। इन दु:खों से युक्त तथा कर्म से बद्ध जीव के लिए स्वर्ग में या पृथिवी पर अल्पमात्र भी सुख नही है।[110]

पुरूष की इन सम्पूर्ण अवस्थाओं को निम्नलिखित तालिका के माध्यम से सरलतया अवबोध किया जा सकता है[111] –

क्रम	शरीर	जीव	मल	भक्ति	लिङ्ग	शक्ति
१.	स्थूल शरीर (योगाङ्ग)	विश्व	कार्ममल	विधेयभक्ति	इष्टलिङ्ग	क्रियाशक्ति
२.	सूक्ष्म शरीर (भोगाङ्ग)	तैजस्	आणवमल	विचारभक्ति	प्राणलिङ्ग	ज्ञानशक्ति
३.	कारण शरीर (योगाङ्ग)	प्राज्ञ	मायीयमल	विशुद्धभक्ति	भावलिङ्ग	इच्छाशक्ति

यहाँ तक सप्त शुद्धाशुद्ध तत्त्व हैं - **"माया कालो नियति: कलाऽविद्या राग: पुरूष इति शुद्धाशुद्धानि सप्त ।"**[112]

▪ छत्तीस तत्त्वों में प्रकृति-तत्त्व

(१३) प्रकृति – "अथोन्मुख्यगर्भितेच्छाशक्तिरेव प्रतिस्फुरणगत्या स्वगतज्ञानक्रियान्योन्याभावलक्षणमायाप्रतिस्फुरणरूपसुखदु:खमोहप्रदसत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थालक्षणमहङ्कारादिभूम्यन्तत्रयोविंशतितत्त्वमूलकारणं प्रकृतितत्त्वं भवति ।"[113]

गर्भ से बाह्य होने को उत्सुक इच्छाशक्ति ही जब अग्नि-स्फुलिङ्ग-न्याय[114] से बाहर निकलती है, तब वह आभ्यन्तर में स्थित क्रिया और ज्ञान शक्ति का अन्योन्याभाव हो जाने पर मायाशक्ति के प्रतिस्फुरण से सुख दु:ख मोहात्मक सत्त्व, रज और तम नामक तीनों गुणों की साम्यावस्था रूप प्रकृति तत्त्व में परिणत हो जाती है । यह प्रकृति तत्त्व अहङ्कार से लेकर भूमि पर्यन्त तेईस तत्त्वों की मूल कारण है । यह सम्पूर्ण सृष्टि पुरूष एवं प्रकृति के संयोग से निर्मित है । प्रकृति शक्ति है, पुरूष शक्तिमान् है । इन दोनों का अविनाभाव सम्बन्ध है । पुरूष के संसर्ग से प्रकृति ही समस्त प्राणिजगत् को, समस्त विकारों को और अखिल गुणों को उत्पन्न करती है ।[115] लौकिक व्यवहार में नर पुरूष का तथा नारी प्रकृति का प्रतीक मानी जाती है । दोनों के कर्मक्षेत्र पृथक्-पृथक् होने पर भी वे एक ही शरीर के दक्षिण और वाम अङ्गों की भाँति एक ही शरीर के दो संयुक्त भाग हैं ।

▪ त्रिविध अन्त:करण

अन्त:करण :- "सुखादिवेद्यावधानकरणरूपत्वादन्त:करणम् इच्छाशक्तिप्रधानम् ।"[116]

इच्छाशक्तिप्रधान सुखादि वेद्य वस्तुओं की ओर ध्यानाकृष्ट कराने के कारण इसका नाम अन्त: करण है । चुँकि सुखादि की वेद्यता शरीराभ्यन्तर ही होती है, अत: शरीर के आभ्यन्तर करण होने के कारण इनका नाम अन्त:करण है ।

(१४) अहङ्कार – "अहं ममेदमित्यभिमानसाधनमहङ्कारतत्त्वं भवति ।"[117]

प्रकृत्ति तत्त्व से "अहं ममेदम् (यह मैं हूँ, यह मेरा है)" एतादृक् अभिमान के उद्भावक साधन अहङ्कार की सृष्टि होती है । जिस प्रकार स्वच्छ स्फटिक मणि जपाकुसुम के साथ संयुक्त होने पर लाल रङ्ग का हो जाता है, उसी प्रकार अहङ्कार के सम्बन्ध से आत्मा भी देहाभिमानी हो जाता है –

"जपायोगाद्यथा राग: स्फटिकस्य मणेर्भवेत् ।

तथाऽहङ्कारसम्बन्धादात्मनो देहमानिता ॥"[118]

(१५) बुद्धि – "निश्चयहेतुर्बुद्धितत्त्वं भवति ।"[119]

पुन: निश्चय की अवस्था को प्राप्त कराने वाली स्थिति का कारण बुद्धितत्त्व होती है । यह प्रकृति की द्वितीय उद्भावना रूप है । यह बुद्धितत्त्व विवेकी विषयों के प्रति विरक्त आत्मा में अनुरक्त मनुष्य की बुद्धि संसारदु:ख को नष्ट करने के लिए प्रवृत्त होती है-

"विवेकिनो विरक्तस्यविषयेष्वात्मरागिण: ।

संसारदु:खविच्छेदहेतौ बुद्धि: प्रवर्तते ॥"[120]

(१६) मन – "स्थाणुर्वा पुरूषो वेति सङ्कल्पविकल्पसाधनं मनस्तत्त्वम् ।"[121]

"यह स्थाणु है या पुरूष" इस प्रकार की सङ्कल्प-विकल्प के साधन का नाम मनस् तत्त्व है । यह प्रकृति तत्त्व की तृतीय उद्भावना है । अन्त: करण में परिगणित मन उभयात्मक (सङ्कल्प- विकल्पात्मक) होता है । मनोलिङ्ग अथवा महालिङ्ग मन को मानस व्यापार के लिए प्रेरित करता है । मन रूपी अन्त:करण का अधिष्ठाता या प्रेरक मनोलिङ्ग या महालिङ्ग कहा गया है । **"हृदयाङ्गे महालिङ्गम्"**[122] उपर्युक्त कथन में यह वचन प्रमाण है ।

▪ ज्ञानेन्द्रिय

ज्ञानेन्द्रिय :- "ज्ञानशक्तिप्रधानत्वाज्ज्ञानेन्द्रियन्द्रियमुच्यते ।"[123]

ज्ञान शक्ति की प्रधानता के कारण इसका अभिधान ज्ञानेन्द्रिय है । इनका प्रमुख कार्य तत्विषय से सम्बन्धित इन्द्रियों के ज्ञान का प्रकाशन करना है ।

(१७) श्रोत्र – "शरीरबाह्यलग्नं सत् शब्दज्ञानैककरणं श्रोत्रम् ।"[124]

शरीर के बाह्य विषय से संलग्न होते हुए शब्द ज्ञान का एकत्रीकरण करने वाला साधन श्रोत्र कहलाता है । शब्द मात्र श्रोत्र के द्वारा ही ग्राह्य है । पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य के अनुसार शरीर के बाह्य विषय से सम्बद्ध होते हुए शब्द का ग्रहण करने वाला श्रोत्र पद से अभिहित होता है- **"शरीरबाह्यविषयसम्बद्धं सत् शब्दग्राहकं श्रोत्रम् ।"**[125] श्रोत्रेन्द्रिय के शब्दविषयक प्रत्यक्ष ज्ञान का अधिष्ठाता या प्रेरक श्रोत्रलिङ्ग है, जिसे प्रसादलिङ्ग भी कहा गया है । **"श्रोत्राङ्गे तु प्रसादकम्"**[126] उपर्युक्त कथन में यह वचन प्रमाण है ।

(१८) त्वक् – "शरीरबाह्यलग्नं सत् स्पर्शज्ञानैककरणं त्वक् ।"[127]

शरीर के बाह्य विषय से संलग्न होते हुए स्पर्श ज्ञान का एकत्रीकरण करने वाला साधन त्वक् कहलाता है । स्पर्श मात्र त्वक् के द्वारा ही ग्राह्य है । पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य के अनुसार शरीर के बाह्य विषय से सम्बद्ध होते हुए स्पर्श का ग्रहण करने वाला त्वक् पद से अभिहित होता है- **"शरीरबाह्यविषयसम्बद्धं सत् स्पर्शग्राहकं त्वक् ।"**[128] त्वगिन्द्रिय स्पर्शविषयक प्रत्यक्ष ज्ञान का

अधिष्ठाता या प्रेरक त्वक्-लिङ्ग है, जिसे चरलिङ्ग भी कहा गया है । **"त्वगङ्गे तु चरलिङ्गकम्"**[129] इस कथन में यह वचन प्रमाण है ।

(१९) चक्षु – "शरीरबाह्यलग्नं सत् रूपज्ञानैककरणं चक्षु: ।"[130]

शरीर के बाह्य विषय से संलग्न होते हुए रूप ज्ञान का एकत्रीकरण करने वाला साधन चक्षु कहलाता है । रूप मात्र चक्षु के द्वारा ही ग्राह्य है । पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य के अनुसार शरीर के बाह्य विषय से सम्बद्ध होते हुए रूप का ग्रहण करने वाला चक्षु पद से अभिहित होता है- **"शरीरबाह्यविषयसम्बद्धं सत् रूपग्राहकं चक्षु: ।"**[131] चक्षु-इन्द्रिय के रूप विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान का अधिष्ठाता या प्रेरक चक्षुर्लिङ्ग है, जिसे शिवलिङ्ग भी कहा गया है । **"दृगङ्गे शिवलिङ्गकम्"**[132] उपर्युक्त कथन में यह वचन प्रमाण है ।

(२०) जिह्वा – "शरीरबाह्यलग्नं सत् रसज्ञानैककरणं रसनम् ।"[133]

शरीर के बाह्य विषय से संलग्न होते हुए रस ज्ञान का एकत्रीकरण करने वाला साधन रसना (जिह्वा) कहलाता है । रस मात्र रसना (जिह्वा) के द्वारा ही ग्राह्य है । पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य के अनुसार शरीर के बाह्य विषय से सम्बद्ध होते हुए रस का ग्रहण करने वाला रसना (जिह्वा) पद से अभिहित होता है- **"शरीरबाह्यविषयसम्बद्धं सत् रसग्राहकं रसनम् ।"**[134] रसनेन्द्रिय के रस विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान का अधिष्ठाता या प्रेरक गुरूलिङ्ग है । **"रसनेन्द्रिये गुरूलिङ्गकम्"**[135] उपर्युक्त कथन में यह वचन प्रमाण है ।

(२१) घ्राण – "शरीरबाह्यलग्नं सत् गन्धज्ञानैककरणं घ्राणम् ।"[136]

शरीर के बाह्य विषय से संलग्न होते हुए गन्ध ज्ञान का एकत्रीकरण करने वाला साधन घ्राण कहलाता है । गन्ध मात्र घ्राण के द्वारा ही ग्राह्य है । पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य के अनुसार शरीर के बाह्य विषय से सम्बद्ध होते हुए गन्ध का ग्रहण करने वाला घ्राण पद से अभिहित होता है- **"शरीरबाह्यविषयसम्बद्धं सत् गन्धग्राहकं घ्राणम् ।"**[137] घ्राणेन्द्रिय के गन्ध विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान का अधिष्ठाता या प्रेरक आचारलिङ्ग है । **"आचारलिङ्गं घ्राणाख्यं भक्तस्थलसमाश्रयम्"**[138] उपर्युक्त कथन में यह वचन प्रमाण है ।

ये पञ्चविध ज्ञानेन्द्रियाँ केवल अपने अपने शब्दादि विषयों का ही विशेष रूप से ग्रहण करती है, फलत: यहाँ अतिव्याप्ति दोष नही उपस्थित होता है । जिस प्रकार ज्ञानेन्द्रियों में व्याप्त अधिष्ठाता लिङ्गदेवता उन्हें उनके विषयों की ओर प्रवृत्त करते हैं, उसी प्रकार कर्मेन्द्रियों में व्याप्त अधिष्ठाता लिङ्गदेवता उन्हें उनके कर्मों की ओर प्रवृत्त करते हैं –

"यथा ज्ञानेन्द्रियाङ्गेषु क्रमाल्लिङ्गं प्रतिष्ठितम् ।

तथा कर्मेन्द्रियाङ्गेषु क्रमाल्लिङ्गं प्रतिष्ठितम् ॥"[139]

▪ कर्मेन्द्रिय

कर्मेन्द्रिय :- "क्रियाशक्तिप्रधानत्वात् कर्मेन्द्रियमित्युच्यते ।"[140]

क्रिया शक्ति की प्रधानता के कारण ही इनका नाम कर्मेन्द्रिय है । इनका प्रमुख कार्य इन्द्रियों के तत्विषयक कर्म का प्रकाशन करना है ।

(२२) वाक् – "उच्चारणक्रियाहेतुर्वाक् ।"[141]

इन कर्मेन्द्रियों में उच्चारण क्रिया के करण को वाक् इस पद से अभिहित किया जाता है । वागिन्द्रिय को उसका अधिष्ठाता वाक्-लिङ्ग वैखरी वाणी के उच्चारण के लिए प्रेरित करता है । इस वाक्-लिङ्ग को प्रसादलिङ्ग भी कहते है । कहा भी गया है – **"वाच: वागिन्द्रियस्य वचनजनकस्य वाचं वागङ्गावच्छिन्नप्रसादलिङ्गम्।"**[142]

(२३) पाणि – "दानादानादिक्रियाहेतु: पाणि: ।"[143]

दान तथा आदानादि क्रिया का हेतु होने के कारण इसका अभिधान पाणि है । ध्यातव्य है कि यहाँ आदि पद से प्रदान, उपदान, अनुदान आदि पद का ग्रहण किया जा सकता है ।

(२४) पाद – "गमनागमनादिक्रियासाधनं पादम् ।"[144]

गमन एवं आगमनादि क्रिया का साधन होने के कारण इसका नाम पाद है । यहाँ भी आदि पद से तिर्यग्गमन, उर्ध्वगमनादि का बोध किया जा सकता है ।

(२५) पायु – "भुक्तर्जीणमलपरित्यागसाधनं पायु: ।"[145]

भुक्त पदार्थों के पच जाने पर मल के रूप में परित्याग करने के साधन को पायु पद से अभिहित किया जाता है ।

(२६) उपस्थ – "रेतोमूत्रपरित्यागक्रियासाधनमुपस्थकम् ।"[146]

वीर्य एवं मूत्र के परित्याग क्रिया के साधन को उपस्थ इन्द्रिय पद प्रदान किया जाता है ।

▪ तन्मात्र

तन्मात्र :- "ध्वनिवर्णशीतोष्णनीलपीतमधुराम्लसुरभ्यसुरभित्वादिविभागशून्यत्वेन सामान्यरूपत्वात् तन्मात्ररूपत्वेन व्यपदेश: ।"[147]

शब्द, स्पर्श, रूप रस एवं गन्ध रूप तन्मात्राओं के गुणों के क्रमश: ध्वनि-वर्ण, शीत-उष्ण, नील-पीत, मधुर-अम्ल तथा सुरभि-असुरभि जैसे विभागों की अभिव्यक्ति न होने तक इनकी सामान्य स्थिति रहती है । वही सामान्य स्थिति तन्मात्र शब्द से व्यवहृत होती है ।

(२७) शब्द – "श्रोत्रैकवेद्य: शब्द: ।"[148]

श्रोत्रेन्द्रिय मात्र के द्वारा वेद्य होने वाला शब्द है । इसके ध्वनि-वर्णादि विभाग शास्त्रों में अवलोकित होते हैं । पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्यकार के मत में श्रोत्र के द्वारा जो ग्राह्य है, वही शब्द है- **"श्रोत्रग्राह्य: शब्द: ।"**[149] स्कन्द पुराण के अनुसार सदाशिव ही शब्दमूर्ति है - **"सदाशिवश्शब्दमूर्ति:"** ।[150]

(२८) स्पर्श – "त्वगेकवेद्य: स्पर्श: ।"[151]

त्वगेन्द्रिय मात्र के द्वारा वेद्य होने वाला स्पर्श है । इसके शीत-उष्णादि विभाग शास्त्रों में अवलोकित होते हैं । पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्यकार के मत में त्वग् के द्वारा जो ग्राह्य है, वही स्पर्श है- **"त्वग्ग्राह्य: शब्द: ।"**[152] स्कन्द पुराण के अनुसार महेश्वर ही स्पर्शमूर्ति है - **"स्पर्शमूर्तिर्महेश्वर:"** ।[153]

(२९) रूप – "नेत्रैकवेद्यं रूपम् ।"[154]

चक्षु-इन्द्रिय मात्र के द्वारा वेद्य होने वाला रूप है । इसके नील-पीतादि विभाग शास्त्रों में अवलोकित होते हैं । पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्यकार के मत में चक्षु के द्वारा जो ग्राह्य है, वही रूप है- **"चक्षुर्ग्राह्यं रूपम् ।"** [155] स्कन्द पुराण के अनुसार रूद्र ही रूपमूर्ति है - **"रूद्रस्तेजोमयस्साक्षाद्"** ।[156]

(३०) रस – "रसनैकवेद्यो रस : ।"[157]

रसनेन्द्रिय मात्र के द्वारा वेद्य होने वाला रस है । इसके मधुर-अम्लादि विभाग शास्त्रों में अवलोकित होते हैं । पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्यकार के मत में रसना (जिह्वा) के द्वारा जो ग्राह्य है, वही रस है- **"रसनाग्राह्यो रस: ।"**[158] स्कन्द पुराण के अनुसार में जनार्दन ही रसमूर्ति है - **"रसमूर्तिर्जनार्दन:"** ।[159]

(३१) गन्ध – "घ्राणैकवेद्यो गन्ध: ।"[160]

घ्राणेन्द्रिय मात्र के द्वारा वेद्य होने वाला गन्ध है । इसके सुरभि-असुरभि-आदि विभाग शास्त्रों में अवलोकित होते हैं । पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्यकार के मत में घ्राण के द्वारा जो ग्राह्य है, वही गन्ध है- **"घ्राणग्राह्यो गन्ध: ।"**[161] स्कन्द पुराण के अनुसार चतुर्वक्त्र ही गन्धमूर्ति है - **"गन्धमूर्तिश्चतुर्वक्त्र"** ।[162]

▪ <u>महाभूत</u>

महाभूत :- "आकाशादीनि महाभूतानीत्युच्यन्ते ।"[163]

आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी यें पञ्च महाभूत कहे जाते है । इनके सम्मिश्रण से स्थूल शरीर की सृष्टि होती है ।

(३२) आकाश – "मरूदग्न्यम्बुभूमीनामवकाशप्रदं शब्दैकगुणकमाकाशम् ।"[164]

वायु, अग्नि, जल तथा भूमि को अवकाश प्रदान कर शब्द रूपी एकमात्र गुण वाला आकाश पद से अभिहित होता है । वह एक तथा नित्य है । आत्मा से आकाश की सृष्टि हुई है, इसमें श्रुति वचन भी प्रमाण है –

"तच्चैकंनित्यम्" "आत्मन: आकाश: सम्भूत: ।"[165]

मुण्डकोपनिषद्वीरशैवभाष्य के अनुसार अक्षर ब्रह्म से आकाश की सृष्टि होती है – **"सदाशिवाऽऽपरपर्यायशरणाङ्गं चिद्व्यापनशक्तिविशिष्टमाकाशं शब्दैकगुणकम् । ईशानादाकाशम् ।"**[166] अर्थात् परा चित् शक्ति से विशिष्ट ईशान (न) नामक अक्षर ब्रह्म को प्रसादलिङ्ग भी कहते है । उस ब्रह्म से पञ्चभूतों में अन्यतम आकाश का आविर्भाव होता है । उस आकाश का एकमात्र गुण शब्द है तथा वह चित् की व्यापन शक्ति से विशिष्ट सदाशिव अथवा शरण नामक अङ्गस्थल से अभिन्न है । **"चिद्व्याप्त्या व्योम:"**[167] अर्थात् चैतन्य की व्याप्ति के कारण आकाश का अपर अभिधान व्योम है । आकाश में परमेश्वर की विभुता (विभ्वी) शक्ति निवास करती है – **"नभसि व्यापकशिवैकीकरणप्रवीणानुग्रहात्मिका विभुताशक्ति: ।"**[168] आकाश को ब्रह्म भी कहा गया है तथा ब्रह्मशब्दवत् आकाश की उत्पत्ति मुख्य है – **"खं ब्रह्म । आकाशोत्पत्तिर्मुख्यैव । कुत: ? ब्रह्मशब्दवत् ।"**[169]

(३३) वायु – "कम्पभ्रमणशोषणवेगवान् स्पर्शैकगुणो वायु: ।"[170]

कम्पन, भ्रमण, शोषण तथा वेगवान स्वभाव वाला एवं स्पर्श रूपी एकमात्र गुण वाला वायु पद से अभिहित होता है । वह अनेक तथा अनित्य है । आकाश से वायु की सृष्टि हुई है, इसमें श्रुति वचन भी प्रमाण है –

"स चानेकोऽनित्यश्च" "आकाशाद्वायु: ।"[171]

मुण्डकोपनिषद्वीरशैवभाष्य के अनुसार अक्षर ब्रह्म से वायु की भी सृष्टि होती है – **"आदिशक्तिविशिष्टचरलिङ्गाऽऽपरपर्यायतत्पुरूषब्रह्मरूपात् वायु:, चित्स्पन्दनशक्तिविशिष्ट-प्राणलिङ्ग्याभिधानेश्वराङ्गं स्पर्शैकगुणकम्, तत्पुरूषाद्वायु: ।"** [172] अर्थात् आदिशक्ति से विशिष्ट तत्पुरूष (म) नामक अक्षर ब्रह्म को चरलिङ्ग भी कहते है । उस ब्रह्म से पञ्चभूतों में अन्यतम वायु का आविर्भाव होता है । उस वायु का एकमात्र गुण स्पर्श है तथा वह चित् की स्पन्दन शक्ति से विशिष्ट ईश्वर का प्राणलिङ्गी नामक अङ्गस्थल है । **"परमानन्दस्पन्दनेन वायु:"**[173] अर्थात् परमानन्द के स्पन्दन के कारण इसको वायु तत्त्व कहा जाता है । वायु में परमेश्वर की संहार (स्पन्दा) शक्ति निवास करती है – **"वायौ शोषकतालक्षणा संहारशक्ति: ।"**[174]

(३४) तेज (अग्नि) – "दाहकं पाचकं रूपवत् तेज: (अतश्चन्द्रादिशीततेजसि दाहकत्वाभावेऽपि सस्यादिवर्धनरूपपाचकस्थितेर्नाव्याप्ति:) ।"[175]

दाहक एवं पाचक शक्ति वाला तथा रूप एकमात्र गुण वाला तेज पद से अभिहित होता है। वह अनेक तथा अनित्य है। चन्द्र जैसे शीतल स्वभाव के तेज में भी दाहकता के न रहने पर उसमें अन्न की वृद्धि एवं पाचन क्रिया के रूप यह विद्यमान है, अत: तेज के प्रस्तुत लक्षण में अतिव्याप्ति की प्रसक्ति नही हो रही है। वायु से अग्नि की सृष्टि हुई है, इसमें श्रुति वचन भी प्रमाण है –

"तच्चानेकमनित्यम्" "वायोरग्नि: ।"[176] **"तत्तेजोऽसृजत ।"**[177]

मुण्डकोपनिषद्वीरशैवभाष्य के अनुसार अक्षर ब्रह्म से अग्नि की भी सृष्टि होती है – **"इच्छाशक्तिविशिष्टशिवलिङ्गाऽऽपरपर्यायाऽघोरब्रह्मरूपात् ज्योति:, चिदुज्वलन-शक्तिविशिष्टप्रसादाभिधं रूद्राङ्गं तेजो रूपैकगुणकम् । अघोराद्वह्नि: ।"**[178] अर्थात् इच्छा शक्ति से विशिष्ट अघोर (शि) नामक अक्षर ब्रह्म को शिवलिङ्ग भी कहते है। उस ब्रह्म से पञ्चभूतों में अन्यतम अग्नि का आविर्भाव होता है। उस अग्नि का एकमात्र गुण रूप है तथा वह चित् की उज्ज्वल शक्ति से विशिष्ट रूद्रदेवता का प्रसाद नामक अङ्गस्थल है। **"उज्ज्वलतया तेज:"**[179] अर्थात् उज्जवलता के कारण अग्नि का अपर अभिधान तेज है। अग्नि में परमेश्वर की सृष्टि (भास्वती) शक्ति निवास करती है – **"तेजसि विश्वप्रकाशितालक्षणा सृष्टिशक्ति: ।"**[180]

(३५) जल – "द्रावकं प्लावकमाप्यायकं रसैकगुणकं सलिलम् ।"[181]

रस रूपी एकमात्र गुण वाला, द्रावक, प्लावक तथा आप्यायक शक्ति वाला जलतत्त्व है। वह अनेक तथा अनित्य है। अग्नि से जल की सृष्टि हुई है, इसमें श्रुति वचन भी प्रमाण है –

"तच्चानेकमनित्यम्" "अग्नेराप:।"[182]

मुण्डकोपनिषद्वीरशैवभाष्य के अनुसार अक्षर ब्रह्म से जल की सृष्टि भी होती है – **"ज्ञानशक्तिविशिष्टगुरूलिङ्गाभिधानवामदेवब्रह्मरूपात् आप:, चिदाप्यायान-शक्तिविशिष्टमहेशाभिधविष्णवङ्गं जलं रसैकगुणकम् । वामदेवादुदकम् ।"**[183] अर्थात् ज्ञान शक्ति से विशिष्ट वामदेव (वा) नामक अक्षर ब्रह्म को गुरूलिङ्ग भी कहते है। उस ब्रह्म से पञ्चभूतों में अन्यतम जल का आविर्भाव होता है। उस जल का एकमात्र गुण रस है तथा वह चित् की आप्यायन शक्ति से विशिष्ट विष्णु देवता का महेश नामक अङ्गस्थल है। **"करूणया जलम्"**[184] अर्थात् करूणा के कारण आप का अपर अभिधान जल है। जल में परमेश्वर की पालन (ह्लादिनी) शक्ति निवास करती है – **"जले पुष्टिलक्षणा पालनशक्ति: ।"**[185]

(३६) पृथ्वी – "गन्धैकगुणकं जलतत्त्वाधारकं छेद्यं पाच्यं भूतत्त्वमिति ।"[186]

गन्ध रूपी एकमात्र गुण वाला, जल तत्त्व को धारण करने वाला, पाच्य तथा छेद्य स्वभाव वाला भू तत्त्व पद से अभिहित होता है। वह अनेक तथा अनित्य है। जल से पृथ्वी की सृष्टि हुई है, इसमें श्रुति वचन भी प्रमाण है –

"तच्चानेकानित्या" "अद्भ्य: पृथिवी।"[187] **"तद्यदपां शर आसीत्। तत्समहन्यत सा पृथिव्यभवत्।"**[188]

मुण्डकोपनिषद्वीरशैवभाष्य के अनुसार अक्षर ब्रह्म से पृथ्वी की भी सृष्टि होती है – **"क्रियाशक्तिविशिष्टाऽऽचारलिङ्गाभिधानसद्योजातब्रह्मरूपात्, चिद्धृतिशक्तिविशिष्टात् पृथिवी, भक्ताभिधंब्रह्माङ्गं गन्धैकगुणकम्। सद्योजातात् पृथिवी।"**[189] अर्थात् क्रिया शक्ति से विशिष्ट सद्योजात (य) नामक अक्षर ब्रह्म को आचारलिङ्ग भी कहते है। उस ब्रह्म से पञ्चभूतों में अन्यतम पृथिवी का आविर्भाव होता है। उस पृथिवी का एकमात्र गुण गन्ध है तथा वह चित् की धारण शक्ति से विशिष्ट ब्रह्मदेवता का भक्त नामक अङ्गस्थल है। **"धृत्या धरणि:"**[190] अर्थात् धृति के कारण पृथ्वी का अपर अभिधान धरणी है। पृथ्वी में परमेश्वर की तिरोधान (धूमावती) शक्ति निवास करती है – **"भूम्यां धूमावत्यापरपर्याया तिरोधानशक्ति:।"**[191] परब्रह्म पृथिवी में रहते हुए पृथिवी शरीर वाले हैं – **"य: पृथिव्यां तिष्ठन् यस्य पृथिवी शरीरम्"**।[192] पृथिवी से ओषधियों की उत्पत्ति श्रुतियों ने प्रतिपादित किया है – **"पृथिव्या ओषधय:।"**[193]

इनके सम्यक् ज्ञान के लिए के लिए निम्नलिखित तालिका द्रष्टव्य है[194] -

क्रम	इन्द्रिय	विषय	भूत	देवता	प्रतिदेवता
१.	श्रोत्रेन्द्रिय (ज्ञानेन्द्रिय) वागिन्द्रिय (कर्मेन्द्रिय)	शब्द	आकाश	सदाशिव	ईशान (न)
२.	त्वगिन्द्रिय(ज्ञानेन्द्रिय) पाणि (कर्मेन्द्रिय)	स्पर्श	वायु	ईश्वर	तत्पुरूष (म)
३.	चक्षुरिन्द्रिय(ज्ञानेन्द्रिय) पाद (कर्मेन्द्रिय)	रूप	अग्नि	रूद्र	अघोर (शि)
४.	रसनेन्द्रिय(ज्ञानेन्द्रिय) उपस्थ (कर्मेन्द्रिय)	रस	जल	विष्णु	वामदेव (वा)
५.	घ्राणेन्द्रिय (ज्ञानेन्द्रिय) पायु (कर्मेन्द्रिय)	गन्ध	पृथ्वी	ब्रह्मा	सद्योजात (य)

"श्रोत्रवाचोर्न भेदोऽस्ति" अनुभवसूत्र के इस वचन के अनुसार यद्यपि श्रोत्रेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय है तथा वागिन्द्रिय कर्मेन्द्रिय, तथापि उन दोनों का एक ही विषय है – शब्द। श्रोत्रेन्द्रिय का

विषय है शब्दविषयक श्रावणप्रत्यक्षज्ञान और वागिन्द्रिय का विषय है उच्चार्यमाण शब्द (वैखरी वाक्) । वीर शैव दर्शन में इन दोनों का अधिष्ठाता एक ही प्रसादलिङ्ग है ।

▪ प्राण

प्राण :- "शरीरान्त:सञ्चारी पञ्चवृत्यात्मकवायु: क्रियाशक्तिप्रधान: ।"[195] अर्थात् शरीर के आभ्यन्तर में सञ्चरण करने के कारण, यह पञ्चवृत्त्यात्मक वायु क्रियाशक्तिप्रधान होता है । उसी अक्षर परब्रह्म से प्राण की उत्पत्ति होती है । परमशिव स्वरूप अक्षरब्रह्म क्रियाशक्ति प्रधान होता है, तब उससे शरीर के आभ्यन्तर में सञ्चार करनेवाले पञ्चवृत्तिस्वरूप क्रियाशक्तिप्रधान पञ्चप्राणवायु स्वरूप प्राणवायु का आविर्भाव होता है । यें पञ्चवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं-

"हृदि प्राणे गुदेऽपान: समानो नाभिमण्डले ।

उदान: कण्ठदेशे स्याद्, व्यान: सर्वशरीरग: ॥"[196]

हृदय में प्राण नामधेय प्राणवायु, गुदाप्रदेश में अपान नामक प्राणवायु, नाभिमण्डल में समान नामक प्राणवायु, कण्ठदेश में उदान नामक प्राणवायु तथा व्यान नामक प्राणवायु सम्पूर्ण शरीर में विचरण करता है । इस प्रकार परशिव से आविर्भूत प्राणवायु का सञ्चार शरीर के आभ्यन्तर में अपनी क्रियाशीलता का परिचय देता है । मुण्डकोपनिषद्वीरशैवभाष्य के मतानुसार शिव के सम्पूर्ण विश्वमय शरीर के अन्तर्गत सञ्चरण करनेवाला वायु प्राण कहा जाता है – **" प्राण: विश्वमयशरीरान्त:सञ्चारी वायु: ।"**[197] यह पञ्चभौतिकतत्त्वों के अन्तर्गत [198]ही होता है, अत: इसकी गणना छत्तीस तत्त्वों में नही की जाती है । यह प्राण भी एक प्रकार का वायु तत्त्व ही है अत: इसका अपर अभिधान प्राणवायु है । सप्त धातुओं (अन्न, रस, रूधिर, मांस, चर्बी, अस्थि, मज्जा और वीर्य) से समावृत यह शरीर शिव का पुर कहा जाता है । यह छत्तीस तत्त्वों से रचित शुद्ध मन रूपी कमलपीठ से युक्त तथा बोध से प्रकाशित शिव का आवास भी कहा जाता है । जिस प्रकार अग्नि में डाला गया काष्ठादि तत्स्वरूप को प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार चित्स्वरूप शिव को समर्पित यह समस्त चराचर शिवमय हो जाता है । शिव का साक्षात्कार होने पर सृष्टि का प्रत्येक कण शिवमय ही अवलोकित होता है ।

उसी अक्षरात्मक परब्रह्म शिव से अग्नि, सूर्य, चन्द्र, पर्जन्य, मनुष्य, स्त्री, वनस्पति, ऋचा, दीक्षा, क्रतु, संवत्सर तथा लोक का आविर्भाव हुआ ।[199] सप्त समुद्र (लवणसमुद्र, इक्षुसमुद्र, सुरासमुद्र, सर्पिसमुद्र, दधिसमुद्र, क्षीरसमुद्र और शुद्धोदक समुद्र)[200] गिरि तथा नदियों का आविर्भाव हुआ । तत्पश्चात् शिव के पञ्चमुखों (सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरूष तथा ईशान) से क्रमश: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा शिवगणों का प्रादुर्भाव हुआ –

"सद्योजातात् ब्राह्मणा: सम्बभूवु:, वामदेवात् क्षत्रिया विशश्च ।

अघोरात् शूद्रास्तत्पुरूषात् शिवस्य पञ्चात्मकस्य गणा: ईशानत: स्यु: ॥"[201]

स्थूल जगत् के मनुष्य दो प्रकार के होते हैं- विशुद्ध और प्राकृत । जिनमें शिवसंस्कारसम्पन्न मनुष्यों को विशुद्ध तथा तद्विहीन मनुष्यों को प्राकृत कहा गया है –

"विशुद्धा: प्राकृताश्चेति द्विविधा मानुषा: स्मृता: ।

शिवसंस्कारिण: शुद्धा: इतरे प्राकृता: मता: ॥"[202]

इस प्रकार शिव से पृथ्वी पर्यन्त छत्तीस तत्त्व ही सृष्टि का नियोजन करते हैं । इन छत्तीस तत्त्वों का रूपान्तर होता है न कि इनका नाश । अत: शिव इव ही ये सत्य है । ये परब्रह्मशिव के विकास रूप है अत: ये मिथ्या नही है । यदा श्रुति कहती है **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"** या **"सर्वो वै रूद्र:"** तो यह कहना न्यायोचित नही होगा कि यह सृष्टि मिथ्या है ।

सन्दर्भिका :-

---

1 कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति । मुण्डकोपनिषदवीरशैवभाष्य, १/१/३ ।

2 श्रीमद्भगवद्गीता, ५/७ ।

3 प्रमाणप्रमेय.....तत्त्वज्ञानान्निश्रेयसाधिगम : । वैशेषिक सूत्र १/१/१ ।

4 ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, द्वितीय सम्पुट, सूत्र २/४/१/२, पृष्ठ १४० ।

5 षड्दर्शनरहस्य, पृष्ठ संख्या ४ ।

6 ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, पृष्ठ १०१ ।

7 सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा, १०/२, पृष्ठ १८७-१८८ ।

8 वही, पृ.३४९ ।

9 वातुलशुद्धाख्यतन्त्र, १/४० ।

10 सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा, ३५० ।

11 वही, १०/९, पृष्ठ १८९ ।

12 सिद्धान्तशिखामणि, ८/२, पृ १३० ।

13 सिद्धान्तशिखोपनिषद्, पृष्ठ ३४ ।

14 पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, प्रस्तावना, पृष्ठ ५ ।

15 सिद्धान्तशिखामणि, ८/२, पृ. १३० ।

16 सिद्धान्तशिखोपनिषद्, पृष्ठ ३४-३५ ।

17 वही, पृष्ठ ३५ ।

18 ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य (द्वितीय सम्पुट), अधिकरण ८, सूत्र ३७, पृष्ठ ४५, (कामिकागम) ।

19 वही (सिद्धान्तागम) ।

20 वही (सिद्धान्तागम) ।

21 वही ।

22 ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, द्वितीय सम्पुट, पृष्ठ ५० ।

23 पञ्चवर्णसूत्रमहाभाष्य, पृष्ठ ४ ।

24 वही, पृष्ठ ७ ।

[25] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३८।

[26] मुण्ड्कोपनिषद्वीरशैवभाष्य, २/१/२, पृ. १५६।

[27] श्वेताश्वतरोपनिषद्, ६/११।

[28] पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृष्ठ ९।

[29] वातुलशुद्धाख्यतन्त्र, १/१५।

[30] सिद्धान्तशिखामणि, १०/४१, पृ. १९१।

[31] वही, १९/४९, पृ. ४०२।

[32] सिद्धान्तशिखोपनिषद्, पृष्ठ १२७।

[33] वही, पृष्ठ ३६-३९।

[34] सिद्धान्तप्रकाशिका ९, पृष्ठ ५२-५३।

[35] सिद्धान्तशिखामणि १०/६८-६९, पृ. २००।

[36] मुण्डकोपनिषद्वीरशैवभाष्य, पृ. १७०।

[37] वही, पृ. १६६।

[38] वही, पृ. ७७।

[39] वही।

[40] वही।

[41] वही।

[42] वही।

[43] वही।

[44] वही, २/१/४, पृ. १७३।

[45] सिद्धान्तशिखामणि, २/१२।

[46] वही, ५/३५।

[47] शक्तिविशिष्टाद्वैततत्त्वत्रयविमर्श:, पृ. २९।

[48] सिद्धान्तशिखामणि, २०/३१-३२।

[49] क्रियासार भाग १/९३-९६।

[50] शिवाद्वैत परिभाषा, पृष्ठ ६।

[51] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३३।

[52] शक्तिसंगमतन्त्र, काली खण्ड , प्रथम पटल ९८ पृष्ठ १२३।

[53] वीरशैवानन्दचन्द्रिका, पृष्ठ ७।

[54] श्वेताश्वतरोपनिषद्, श्लोक संख्या ६/७-८।

[55] वही, श्लोक संख्या १/२।

[56] बृहदारण्यकोपनिषद्, १/२/५।

[57] प्रश्नोपनिषद्, ६/३।

[58] ऐतरेयोपनिषद्, १/१-२।

[59] ऋग्वेद संहिता, १०/१९०/३।

[60] वातुलशुद्धाख्यतन्त्र, १/२४-२७।

[61] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३९।

[62] ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, द्वितीय सम्पुट, सूत्र २/३/१५/४२, पृष्ठ १३२।

[63] पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. ९।

[64] वातुलशुद्धाख्यतन्त्र, १/१६ ।

[65] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३३ ।

[66] वातुलशुद्धाख्यतन्त्र, १/४० ।

[67] वही, १/२८-२९ ।

[68] वही, १/३०-३२ ।

[69] वही, १/४४-४७ ।

[70] वही, १/४८-५२ ।

[71] वही, १/५३-५७ ।

[72] वही, १/५८-६४ ।

[73] वही, १/६५-८५ ।

[74] वही, ७/४०-४१ ।

[75] वही, ७/४२-४५ ।

[76] वही, ७/४६-४९ ।

[77] वही, ७/५०-५३ ।

[78] वही, ७/५४-६० ।

[79] पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. ९ ।

[80] वातुलशुद्धाख्यतन्त्र, १/१६ ।

[81] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३३ ।

[82] पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. ९-१० ।

[83] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३३ ।

[84] वही ।

[85] ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य , पृष्ठ ३८२ ।

[86] श्वेताश्वतरोपनिषद्, श्लोक संख्या ४/१० ।

[87] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३५ ।

[88] वही, पृ, ३४ ।

[89] वही ।

[90] वही ।

[91] वही ।

[92] वही ।

[93] सिद्धान्तप्रकाशिका, पृ. २ ।

[94] कैवल्योपानिषद्, प्रस्तावना, पृ. २४ ।

[95] वही ।

[96] सिद्धान्तशिखामणि, १०/६८-६९, पृ. २०० ।

[97] ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, द्वितीय सम्पुट, पृ.१०८ ।

[98] वही, पृ. ११६ ।

[99] अनुभवसूत्र, ४/४ ।

[100] वही, २/४-५ ।

[101] वही, ४/८-१० ।

[102] कैवल्योपनिषद्, प्रस्तावना, पृ. ३० ।

[103] सिद्धान्तशिखामणि, १८/७, पृष्ठ ३५७।

[104] वही, १८/६, पृ. ३५६।

[105] वही, १९/५२, पृ. ४०३।

[106] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३४।

[107] पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. १६।

[108] वही।

[109] वही।

[110] सिद्धान्तशिखामणि, ५/६७-७०, पृ. ८८।

[111] कैवल्योपनिषद्, प्रस्तावना, पृ. ३०।

[112] मुण्डकोपनिषद्वीरशैवभाष्य, पृ. १६६।

[113] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ, ३४।

[114] मुण्डकोपनिषद्वीरशैवभाष्य, २/१/१।

[115] श्रीमद्भगवद्गीता, १३/१९।

[116] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३४।

[117] वही।

[118] सिद्धान्तशिखामणि, १८/८, पृ. ३५७।

[119] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३४।

[120] सिद्धान्तशिखामणि, ५/ ७६, पृ ९०।

[121] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३४।

[122] केनोपनिषद्वीरशैवभाष्य, १/२, पृ.१२।

[123] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३४।

[124] वही।

[125] पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. १२।

[126] केनोपनिषद्वीरशैवभाष्य, १/२, पृ.१२।

[127] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३४।

[128] पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. १२।

[129] केनोपनिषद्वीरशैवभाष्य, १/२, पृ.१४।

[130] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३४।

[131] पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. १२।

[132] केनोपनिषद्वीरशैवभाष्य, १/२, पृ. १२।

[133] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३४।

[134] पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. १२।

[135] केनोपनिषद्वीरशैवभाष्य, १/२, पृ. १४।

[136] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३४।

[137] पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. १२।

[138] केनोपनिषद्वीरशैवभाष्य, १/२, पृ. १४।

[139] वही।

[140] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३५।

[141] वही पृ. ३४।

142 केनोपनिषद्वीरशैवभाष्य, १/२, पृ. १३ ।

143 शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३४ ।

144 वही ।

145 वही ।

146 शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३४-३५ ।

147 शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३५ ।

148 वही ।

149 पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. १२ ।

150 ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, द्वितीय सम्पुट, अधिकरण ७, सूत्र १३, पृष्ठ ९९ ।

151 शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३५ ।

152 पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. १२ ।

153 ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, द्वितीय सम्पुट, अधिकरण ७, सूत्र १३, पृष्ठ ९९ ।

154 शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३५ ।

155 पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. १२ ।

156 ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, द्वितीय सम्पुट, अधिकरण ७, सूत्र १३, पृष्ठ ९९ ।

157 शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३५ ।

158 पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. १२ ।

159 ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, द्वितीय सम्पुट, अधिकरण ७, सूत्र १३, पृष्ठ ९९ ।

160 शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३५ ।

161 पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. १२ ।

162 ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, द्वितीय सम्पुट, अधिकरण ७, सूत्र १३, पृष्ठ ९९ ।

163 शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३५ ।

164 वही ।

165 पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. १३ ।

166 मुण्डकोपनिषद्वीरशैवभाष्य, २/१/३, पृ. १५७ ।

167 सिद्धान्तशिखामणि, १०/६८-६९, पृ. २०१ ।

168 वही, १८/३४, पृ. ३६७ ।

169 ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, द्वितीय सम्पुट, पृ. ८९ ।

170 शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३५ ।

171 पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. १३ ।

172 मुण्डकोपनिषद्वीरशैवभाष्य, २/१/३, पृ. १५७ ।

173 सिद्धान्तशिखामणि, १०/६८-६९, पृ. २०१ ।

174 वही, १८/३४, पृ. ३६७ ।

175 शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३५ ।

176 पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. १३ ।

177 ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, द्वितीय सम्पुट, पृ. ९३ ।

178 मुण्डकोपनिषद्वीरशैवभाष्य, २/१/३, पृ. १५७ ।

179 सिद्धान्तशिखामणि, १०/६८-६९, पृ. २०१ ।

180 वही, १८/३४, पृ. ३६७ ।

[181] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३५।

[182] पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. १३।

[183] मुण्डकोपनिषद्वीरशैवभाष्य, २/१/३, पृ. १५८।

[184] सिद्धान्तशिखामणि, १०/६८-६९, पृ. २०१।

[185] वही, १८/३४, पृ. ३६७।

[186] शिवाद्वैतमञ्जरी, पृ. ३५।

[187] पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्य, पृ. १३।

[188] ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, द्वितीय सम्पुट, पृ. ९५।

[189] मुण्डकोपनिषद्वीरशैवभाष्य, २/१/३, पृ. १५८।

[190] सिद्धान्तशिखामणि, १०/६८-६९, पृ. २०१।

[191] वही, १८/३४, पृ. ३६७।

[192] ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, द्वितीय सम्पुट, पृ. ९५।

[193] वही, पृ. ९३।

[194] मुण्डकोपनिषद्वीरशैवभाष्य, पृ. ३०१।

[195] वही, २/१/३, पृ. १५९।

[196] वही।

[197] वही, पृ. १७५।

[198] सिद्धान्तशिखामणि, २०/९-१०, पृ. ४२३।

[199] मुण्डकोपनिषद्वीरशैवभाष्य, २/१/५-६, पृ. १७८-१७९।

[200] वही, पृ. १८७।

[201] सिद्धान्तशिखोपनिषद्, ११ ।

[202] सिद्धान्तशिखामणि, १०/३४।

चतुर्थ अध्याय

वीर शैव दर्शन की वर्तमान समय में प्रासङ्गिकता

चतुर्थ अध्याय : वीर शैव दर्शन की वर्तमान समय में प्रासङ्गिकता

वीर शैव दर्शन प्राचीन होते हुए भी आधुनिक है । इसमें परम्परा के साथ आधुनिकता का सम्मिश्रण भी अवलोकित होता है । श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार **"स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्म: भयावह:"**[1] स्वधर्म का परित्याग कदापि नही करना चाहिए । इसके अनेक ग्रन्थ जीवन के प्रत्येक मार्ग की वैज्ञानिकता से परिपूर्ण होकर भलीभाँति व्याख्या करते है । ब्राह्मणों के जटिल कर्मकाण्डों के विरोधक इस धर्म में जहाँ स्त्री और शूद्र को समान अधिकार प्रदान किया गया, वही इसके अनुयायियों ने समाज की अनेक कुरीतियों को समूल समाप्त कर दिया । यह धर्म भी है एवं दर्शन भी है । आज जिसको हम विकास का नाम दे रहे हैं, वह केवल भौतिक विकास ही है । इस विकास से हमें कभी भी मानसिक एवं आध्यात्मिक शांति प्राप्त नही हो सकती । आज बुद्धिजीवी वर्ग में आत्महत्या की सम्भावना प्रबल होती जा रही है । इसका प्रमुख कारण है कि हम भौतिक सुख-सुविधाओं से अपनी रिक्तता को आवृत करना चाहते हैं लेकिन यह पूर्णरूपेण हमें आवृत नही कर पाता है । फलत: हम रिक्तता को दूर नही कर पाते और हमारा मन अशान्त रहता है । **"अशान्तस्य कुत: सुखम्"**[2] के अनुसार अशान्त मनुष्य सुखी नही रह सकता है । आधुनिक काल में द्रव्य मात्र अवशेष रह गया है । पूंजीपतियों की विद्वता ही दृष्टिगोचर हो रही है । दरिद्र विद्वान् लुप्तप्राय हो गये है । हम पाश्चात्य सभ्यता का बहुविध अनुकरण कर रहे है, जिससे हमारी वास्तविक परम्परा का ह्रास ही हो रहा है । हम केवल भौतिक उन्नति के साधनों को ही सर्वस्व मान बैठे हैं । इस प्रकार आज हमें आवश्यकता है ऐसे मार्ग की जो हमें सम्पूर्ण विकास की ओर अग्रसर करें । हमारी सनातन परम्परा जीवन के प्रत्येक पथ का नियोजन वैश्विक परिदृश्य के आलोक में करती हैं किन्तु आधुनिक भारतीय परम्परा पाश्चात्य का अनुकरण करके केवल स्वार्थता एवं लोलुपता का भला चाहती है । आज उन कर्मचारियों की संख्या अत्यल्प है जो अपने कर्तव्य का निर्वहण भलीभाँति करते है । उसके कार्य से भले ही पर्यावरण की क्षति हो, प्रकृति का ह्रास हो किन्तु उन्हें केवल द्रव्य मात्र का लाभ ही अवलोकित होता है जिसके कारण हमारा समाज अवनति को प्राप्त होता दिख रहा है । भौतिक सुख सुविधाओं से हम कदापि सुख नही प्राप्त कर सकते क्योंकि वह क्षणिक है । जहाँ उसका प्राप्त होना हमारे लिए सुखदायी होता है वहीं उसका वियोग हमारे लिए दु:खप्रद भी होता है । सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक पृष्ठभूमि की प्रौढ़ता के कारण इस दर्शन की वर्तमान समय में आवश्यकता है । इस प्रकार वीर शैव की वर्तमान समय में निम्नलिखित कारणों से प्रासंगिकता है –

▪ वीर शैव दर्शन की सामाजिक स्थिति

व्यक्ति के सम्यक् व्यवहार सञ्चालन के लिए समाज भी उत्तदायी होता है । यदि समाज अच्छा हो तो व्यक्ति स्वयमेव ही अच्छा हो जाता है । कहा भी गया है **"संसर्गजा दोषगुणा: भवन्ति ।"**[3] समाज में प्रसरित कुरीतियों के कारण प्रत्येक व्यक्ति दु:खित होता है । अत: समाज का ये कर्तव्य होता है कि वह कोई भी नियम वैश्विक परिदृश्य के परिप्रेक्ष्य में ही उपस्थित करें । इस मत की पुष्टि प्रो० के० आर० श्रीनिवास अय्यंगार तथा बसवनाल की निम्नलिखित पंक्तियां करती हैं –

"Virasaivism was a healthy growth on the soil of Hinduism because it attemted many useful reforms, Neither sex, norsocial status, nor caste disqualifies a person from attaining salvation & hence, in the eyes of a Virasaiva the Untouchable & the weaker sex are potentially the religious & social equals of the members of the highest castes, This means not merely welcome levelling of the castes (and hence eradication of Untouchability) but also a discountenancing of the five pollutions yet observed by other Hindus. The Virasaivas do not attach any importance the "pollutions" on account of the births, deaths, woman's monthaly courses, etc. So long as the linga worn on the body like a fire it burns away all impurities. Further from the Social point of view it is worthy of note that Basava discouraged mere Vegrancy & beggary as a means of living, & extolled the simple dignity of labour ."[4]

वीर शैव मत ऐसा ही सामाजिक निदर्शन प्रस्तुत करता है -

▪ जाति-प्रथा का विरोध

जाति प्रथा एक सामाजिक कुरीति है, जिसके कारण समाज में छोटे-बड़े या उच-नीच का भाव उत्पन्न होता है । वीर शैव मत जातिप्रथा का विरोध करता है । तदनुसार – **"शिवसंस्कारसम्पन्ने जातिभेदो न विद्यते ।"**[5]

"न जातिभेदो लिङ्गार्चास्सर्वै: स्मृता : ॥"[6]

लिङ्गार्चा में जातिभेद करना महापाप समझा जाता है । यहाँ सबको अधिकार है अपने इष्ट की पूजा करने का । इस जातिभेद के कारण आधुनिक समाज में दरार पड़ती दिख रही है । लोग अपनी जातिवालों को प्राथमिकता दे रहे हैं । फलस्वरूप सबको समान अधिकार से वञ्चित रहना पड़ रहा है । प्राचीन काल में कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था थी । मनुस्मृति में भी कहा गया है - **"जन्मना जायते शूद्र: संस्काराद् द्विज उच्यते ।"**[7] अपने अपने कर्म के अनुसार वह व्यक्ति उस जाति का माना जाता था । सम्पूर्ण मानव जाति का सम्मान किया जाता था क्योंकि समाज सबके कर्मों से प्रभावित था । सभी जातियों के कर्मों से ही समाज समुचित रूप से व्यवहृत होता था । ऐसे भी उद्धरण प्राप्त होते हैं कि एक पिता के चार सन्तान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र थे । परवर्ती काल में यह व्यवस्था कर्मणा न होकर जन्मना हो गई, जिसके कारण समाज में अनेक प्रकार की कुरीतियोँ का प्रवेश हो गया । जिसका विरोध वीर शैव ने किया । तदनुसार जाति व्यवस्था में सबको शूद्र होना आवश्यक है क्योंकि जब तक सेवा भाव व्यक्ति के मन में उत्पन्न नही होगा तब तक वह किसी भी कार्य का सञ्चालन समुचित रूप से नही कर सकता । इस मत में तो छूआछूत की भावना है ही नही । जो कोई भी भगवान का भजन करता है वह भगवान का हो जाता है, वीर शैव मत इसी सिद्धान्त का पालन करता है । यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने कर्तव्य का समुचित रूप से पालन करें तो फिर समाज में अव्यवस्था आ ही नही सकती ।

- **<u>परिश्रम का महत्त्व :-</u>**

वीर शैव मत में कायक या कर्म को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है । लिङ्ग (शिव) तथा अंङ्ग(जीव) में ज्ञान तथा कर्म का समुच्चय भी सिद्धान्तत: आवश्यक प्रतीत होता है । कहा भी गया है-

"ज्ञाने सिद्धेऽपि विदुषां कर्मापि विनियुज्यते ।

फलाभिसन्धिरहितं तस्मात्कर्म न सन्त्यजेत् ॥"[8]

आचार ही सभी विद्याओं का अलङ्कार है । आचारहीन पुरूष लोक में निन्दित होता है । शरीरव्याधि के नाश के लिए केवल औषधि का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है, अपितु औषधिग्रहण या लेप के अनन्तर ही व्याधि की निवृत्ति होती है अत: ज्ञानी को आचारवान होना चाहिए । सिद्धान्तशिखामणि ग्रन्थ भी पङ्ग्वबन्धन्याय से इस तथ्य का समर्थन करता है-

"अन्धपङ्गुवदन्योन्य सापेक्षे ज्ञानकर्मणी ।

फलोत्पत्तौ विकारस्तु तस्माद्वयमाचरेत् ॥"[9]

वीर शैवों के अनुसार कर्म दो तरह के होते हैं- पशुकर्म तथा पतिकर्म । फलाकांक्षा से युक्त ज्योतिष्टोमादि कर्मादि पशुकर्म कहे जाते हैं तथा फलाभिसन्धिरहित परब्रह्मशिव के ध्यानोपासनाकर्म पतिकर्म कहे जाते हैं । इन दोनों प्रकार कर्म को वीर शैव प्राथमिकता देता है। तदनुसार श्रम किये बिना किसी को अन्न ग्रहण करने का अधिकार नही है । साधना करने के लिए साधक को संसार से पलायन करने की आवश्यकता नही है । प्रत्येक व्यक्ति को स्व वृत्ति में ही रहकर साधना करनी चाहिए नही तो समाज में अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है । यह मत निवृत्ति एवं प्रवृत्ति के मार्ग का बोधक न होकर सहजमार्ग का बोधक है । श्रम या श्रमिक को जो स्थान वीर शैव धर्म में प्राप्त हुआ है, वह स्थान विश्व के किसी भी धर्म में नही है । वीर शैव मत में इसके लिए **"दासोऽहं"**[10] शब्द का प्रयोग किया जाता है । यह मत दासोऽहं से शिवोऽहं की यात्रा तय करता है । यह दासोऽहं की उद्भावना वीर शैवों के पञ्चाचार में से भृत्याचार के परिप्रेक्ष्य में है। भृत्यभाव तथा वीरभृत्यभाव रूप से यह आचार भी द्विविध होता है । सबकी सेवा करना भृत्यभाव तथा सर्वस्वसमर्पण वीरभृत्यभाव कहलाता है।[11] तदनुसार प्रत्येक व्यक्ति के मन में यह भाव उत्पन्न होना चाहिए कि मैं सम्पूर्ण विश्व का दास हूँ । इस प्रकार नर सेवा से नारायण सेवा स्वयमेव हो जाएगी । गाय उसको दूध नही देती जो उसकी पीठ पर बैठता है, अपितु उसको दूध देती है जो उसके पैरों तले आता है । सेवाभावना से जनमानस में व्याप्त ईष्या, द्वेष, आदि दुर्भावनाओं को समाप्त किया जा सकता है । प्रत्येक कण में परब्रह्मशिव की भावना न केवल मानव को मानव के प्रति अपितु मानव को प्रत्येक कण के प्रति सौहार्द्र को बढाती है, जिससे विश्वबन्धुत्व की भावना को भी प्रश्रय मिलता है । वीर शैव के आचार्य बसव के मत में पत्थर के नाग को हम दूध अर्पित करतें हैं किन्तु यदि सत्य में ही नाग उपस्थित हो जाए तो उसे मारते हैं । जो पत्थर भोजन नही कर सकता, उसे हम भोजन कराते हैं और जो समक्ष क्षुधित व्यक्ति है, उसे भोजन कराने से कतराते है । तदनुसार आंधी में जो वृक्ष झुक जाते हैं उनकी रक्षा हो जाती है किन्तु जो तनकर खड़े हो जाते हैं, वें टूट जाते हैं । ज्ञान होने के पश्चात् व्यक्ति को कर्म करना चाहिए न कि अहङ्कार के वशीभूत होकर शोषण करना चाहिए । कोई भी कार्य छोटा नही होता, यदि उसे भगवान के लिए समर्पण भाव से किया जाय । इस मत में रूढ़ि की अपेक्षा मानवता को, उपचार की अपेक्षा आत्मविकास को महत्त्व प्रदान किया गया है ।

▪ गुरू का महत्त्व :-

सभी धर्मों की तरह वीर शैव भी गुरू को परब्रह्म की श्रेणी में रखता है । तदनुसार – **"गुरूमेव शिवं पश्येत शिवमेव गुरूस्तथा ।"**[12] गुरू उत्प्रेरक होता है । संभवत: इसीलिए कहा गया है

कि बिना गुरू के ज्ञान नही होता है। हमारे बाह्याभ्यन्तर में स्थित अज्ञान को दूर कर वह हमारे ज्ञान के मार्ग को प्रशस्त करता है। गुरू हमें ज्ञान से दीक्षित करके इहलोक और परलोक दोनों स्थलों में आनन्द प्रदान करता है। इसमें भक्ति को सर्वश्रेष्ठ रूप में स्वीकार किया गया है, जिसका अवबोध निम्नलिखित रूप में किया जाता है[13] –

भक्ति											
बाह्य			आभ्यन्तर			बाह्याभ्यन्तर					
मानसिक	कायिक	वाचिक	मानसिक	वाचिक	कायिक	मानसिक	वाचिक	कायिक			
तप	तप	तप	तप	तप	तप	तप	तप	तप			
कर्म	कर्म	कर्म	कर्म	कर्म	कर्म	कर्म	कर्म	कर्म			
जप	जप	जप	जप	जप	जप	जप	जप	जप			
ध्यान	ध्यान	ध्यान	ध्यान	ध्यान	ध्यान	ध्यान	ध्यान	ध्यान			
ज्ञान	ज्ञान	ज्ञान	ज्ञान	ज्ञान	ज्ञान	ज्ञान	ज्ञान	ज्ञान			

गुरू के साथ शिष्य का सम्बन्ध मित्रवत् होना चाहिए। इस तथ्य को श्रुति भी प्रतिपादित करती है। तदनुसार गुरू और शिष्य को परस्पर रक्षाभाव होना चाहिए। साथ ही भोजन करना चाहिए, साथ ही वीर्यार्जन करना चाहिए। अध्ययन-अध्यापन करते हुए तेजस्विता अर्जित करनी चाहिए किन्तु परस्पर द्वेष का भाव नही आना चाहिए। वीर शैव दर्शन भी केवल गुरू के प्रति ऐसा सद्भाव प्रकटित ही नही करता अपितु उसको प्रायोगिक रूप भी प्रदान करता है।

- **<u>प्रकृति का सम्मान :-</u>**

यह धर्म प्रकृति का पूर्ण सम्मान करता है। प्रकृति के प्रत्येक कण को शिव मानकर उनकी अर्चना एवं साधना करता है। प्रकृति के शोषण के विरूद्ध यह धर्म पञ्चयज्ञों को प्राथमिकता प्रदान करता है, जो यज्ञ प्रकृति की रक्षा के ही द्योतक है। वीर शैव मत में पञ्चमहायज्ञों के अनुष्ठान का अत्यधिक महत्व है। जहाँ भौतिक अर्थ में ये पर्यावरण को विशुद्ध करते हैं, वहीं आध्यात्मिक अर्थ में यह आत्मा के साथा परमात्मा के मिलन का साधन बनते हैं। वेदों में इसलिए अग्नि को महत्वपूर्ण देवता माना गया है। शतपथ ब्राह्मण के वचनानुसार ***"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म"*** की भाँति यह सम्प्रदाय यज्ञ को सर्वोपरि स्थान देता है। यज्ञ का यहाँ तात्पर्य कर्म भी है। इनके पञ्चयज्ञों के नाम इस प्रकार हैं-

"तप: कर्म जपो ध्यानं ज्ञानं चेत्यनुपूर्वकं ।

पञ्चधा कथ्यते सभिस्तदेव भजनं पुन: ॥"[14]

तप (परब्रह्मशिव के लिए शरीर का सम्यक् सन्तुलन), कर्म (परब्रह्म शिवोपासना), जप (पञ्चाक्षर या प्रणव का अभ्यास), ध्यान (परब्रह्म के सगुणरूप का ध्यान) तथा ज्ञान (वेदार्थ तथा शैवागमों का ज्ञान) ये पञ्चयज्ञों में परिगणित होते हैं । इन यज्ञों के द्वारा मनुष्य अपनी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है ।

- **<u>स्त्री-पुरूष की समानता :-</u>**

भारतीय परम्परा में वैदिक काल से ही स्त्री एवं पुरूष सृष्टि के लिए समान रूप से उत्तरदायी है । **नारी**[15] इस स्थूल सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ उपहार है । यह आद्या सृष्टि के साथ ही पालिका और पोषिका भी है । इसका स्थूल रूप आनन्ददायक है तो इसके सूक्ष्म रूप में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समाहित है, फलत: इसका अपर अभिधान शक्ति भी है । शक्ति का एक स्वरूप ममता तथा करूणा से ओत-प्रोत है, तो उसका द्वितीय स्वरूप क्रोधयुक्त दुर्गा तथा काली भी है । भारतीय परम्परा विविध सम्प्रदायों में अवस्थित होते हुए भी एकत्व का पूर्ण समर्थन करती है । यहाँ धर्म तथा दर्शन समकक्ष शब्द माने जाते हैं । दोनों ही व्यवहार का समुचित सञ्चालन करने के लिए प्रवृत्त होते हैं । पुरूष और नारी समाज के अभिन्न अंग हैं । नारी के बिना पुरूष तथा पुरूष के बिना नारी अपूर्ण है । दोनो का मिलन ही एक नवीन सृष्टि की संरचना करता है, फलस्वरूप लौकिक व्यवहार में नारी का वामाङ्ग तथा पुरूष का दक्षिणाङ्ग शुभ माना जाता है । संस्कृत भाषा में पुरूष शब्द का तात्पर्य है **"पुरि शेते इति पुरूष: ।"**[16] अर्थात् पुर (शरीर) में शयन करने वाला पुरूष पद से अभिहित होता है । आधुनिक अवधारणा के अनुसार पुरूष का अर्थ अन्य ही अवलोकित होता है, जो उसके मूलार्थ से अति दूर अवस्थित है । तदनुसार विविध भाषाओं में पुरूष का अर्थ एक शरीर विशेष है, जो उसे अन्य शरीरों से व्यावर्तित करता है । पुरूष प्रधान समाज में नारी की स्थिति का दयनीय होना स्वार्थता का प्रतीक है, जो उसके महत्त्व को नही समझते हुए स्वत्वविनाश की ओर जाता है । स्थूलतया पुरूष के आभ्यन्तर में भी स्त्रीत्व है तथा स्त्री के आभ्यन्तर में भी पुरूषत्व है (पुरूष में पुरूषत्व की प्राथमिकता है एवं स्त्रीत्व की गौणता जब कि स्त्री में स्त्रीत्व की प्राथमिकता है एवं पुरूषत्व की गौणता) किन्तु सूक्ष्मतया सर्वत्र पुरूषत्व है क्योंकि इसका व्यापक अर्थ है - साक्षात् परब्रह्म, जो तुरीयावस्था की ओर इङ्गित करता है ।

ये परस्पर एक दूसरे के पूरक है किन्तु परवर्ती काल में स्त्री के सम्मान का केवल ह्रास ही नही हुआ अपितु उसे शूद्र की श्रेणी में रखा गया। वीर शैव मत में नारी का समुचित सम्मान करते हुए उसके अधिकारों को पुनर्जीवित किया गया। इस मत में नारी की स्थिति निम्नलिखित है –

- **<u>वीर शैव मत में शक्ति (नारी) का महत्त्व</u>**

वेदों में पृथ्वी को माता माना गया है तथा स्मृतिग्रन्थों में तो यह भी कहा है कि जहाँ नारी की पूजा की जाती है, वही देवताओं का भी वास रहता है। भारतीय चतुर्विध आश्रमों में गृहस्थाश्रम को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। गृहस्थाश्रमरूपी रथ के पति और पत्नी दो पहिये हैं। जहाँ एक पहिये में खराबी होने से रथ की गति में अवरोध उत्पन्न होता है, वहाँ यदि दोनो ही पहिये खराब हुए तो रथ का चलना ही कठिन हो जाता है। संयम एवं मर्यादा के पथ पर चलता हुआ गृहस्थरूपी रथ शीघ्र ही अपने गन्तव्य पर पहुँच सकता है। कहा भी गया है –

"भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च।

भार्या धर्मफलायैव भार्या सन्तानवृद्धये ॥"[17]

वीर शैव मत में भी नारी को विशेष स्थान दिया गया है –

"स्त्रियो देवा: स्त्रिय: सृष्टि : स्त्रिय: कल्याणकारिणी।

स्त्रीरूपं महेशानि यत्किञ्चित्जगतीतले ॥"[18]

आगमकाल से लेकर आधुनिक काल में भी भारत के विभिन्न प्रान्तों में इस जीवन्त परम्परा में स्त्री के दर्शनमात्र से ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की पूजा हो जाती है। इस धर्म के मत में सम्पूर्ण चराचर नारीरूप ही है, अत: स्त्री भोग्या न होकर पूज्या है। उसके बिना सृष्टि का कोई भी कार्य अपूर्ण है। स्त्रियों का हरण करनेवाला तथा कन्याओं को मारनेवाला देवताओं से शापित एवं सदा दरिद्र होता है। अर्द्धनारीश्वर की अर्चना करनेवाले स्त्रियों की निन्दा, उनपर प्रहार इत्यादि को सदैव त्यागने की बात करते हैं-

"स्त्रीषु निन्दां प्रहारं च सर्वथा परित्यजेत्।

परद्रव्यं परस्त्रीं च परान्नं च सर्वथा त्यजेत् ॥"[19]

जिस ब्रह्मविद्या का अधिकार केवल पुरूषों तक ही सीमित हो गया था। कहा भी गया था **"स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम्।"**[20] उसको वीर शैव ने स्त्रियों के लिये भी अधिकृत किया। तदनुसार

संसार का प्रत्येक प्राणी ब्रह्मविद्याधिकारी है –

"ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रास्त्रियश्चाधिकारिण: ।

गार्ग्यामपि स्त्रियां चैव सा यतो ब्रह्मचारिणी ॥"[21]

लिङ्गपूजा में सबका स्थान समान है –

"स्त्रीवाथ पुरूषष्षण्डचाण्डालो द्विजवंशज: ।

न जातिभेदो लिङ्गार्चास्सर्वै: स्मृता : ॥"[22]

इस प्रकार वीर शैव धर्म में नारी को विशेष स्थान देते हुए उसे आदरणीय और पूजनीय माना गया है ।

- **<u>वीर शैव दर्शन में शक्ति (नारी) की विशेषता</u>**

वीर शैव के तात्पर्य में भी शक्ति अवस्थित है –

"वी" शब्देनोच्यते विद्या, शिवजीवैक्यबोधिका ।

तस्यां रमन्ते ये शैवा वीरशैवास्तु ते मता : ॥"[23]

किसी भी शिक्षा का उद्देश्य व्यवहार का सम्यक् सञ्चालन करना होता है । व्यवहार के नियोजन में दर्शनशास्त्र के सूक्ष्म विचारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है । ये विचार प्राणियों के दैनिक जीवन से लेकर उनके शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के साधन होते हैं । फलत: भारतीय मनीषियों ने उनके निर्माण में भलीभाँति सावधानी बरती । किसी ने उसकी स्थूलता को प्राथमिकता दी तो किसी ने उसको सूक्ष्मता को । स्थूलता जहाँ परिवर्तित मानी गयी, वही सूक्ष्मता अनश्वर मानी गयी । साध्य एक होते हुए भी मार्गभेद होना स्वाभाविक था क्योंकि –

"मृग्याभेदेऽपि मार्गभेदस्य संभव: ।"[24]

जिसका जितना ही व्यापक चिन्तन था, वह उतना ही प्रभावशाली हुआ । इन विचारों ने मानव समाज को भी प्रभावित किया । नारी एवं पुरूष के विषय में भी दर्शनशास्त्र के कुछ प्रमुख सम्प्रदायों के विचार प्रस्तुत हैं -

(१)उत्तरमीमांसा दर्शन :- वेदान्त दर्शन में नारी को माया का प्रतीक माना गया है तथा

ब्रह्मप्राप्ति के लिए उसका विनाश आवश्यक माना गया है। वह परमेश की शक्ति है लेकिन वह विवेक का नाश करती है और उसी के प्रभाव से जीव अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर इस सृष्टि के बन्धन में उलझ जाता है। माया का ग्रहण बन्धन है तथा उसका विनाश मुक्ति है। यदि हम इस सिद्धान्त को व्यवहार से जोड़कर देखें तो हमें ज्ञात होता है कि नारी का साहचर्य जहाँ जनसामान्य के लिए भोग प्राप्ति का साधन है वही उसका परित्याग मोक्ष का साधन माना गया है। महात्मा बुद्ध इसके साक्षात् प्रमाण है, जिन्होनें ने स्त्री को निर्वाण का उपदेश देना भी उचित नही समझा। नारी के साथ रहते हुए अत्यल्प व्यक्तियों को ही मोक्ष प्राप्त करते देखा गया है, नही तो अधिकांशत: को विवाहानन्तर उसका साथ छोड़ना पड़ा है या फिर आजीवन अविवाहित ही रहना पड़ा है।

विषयों में सर्वप्रधान विषय है – पुरूष के लिए नारी तथा नारी के लिये पुरूष। इनमें नारी की अपेक्षा पुरूष प्राणी का चित्त अधिक दुर्बल है अत: उसका पतन शीघ्र हो जाता है (और उसके पतन में तो नारी का पतन है ही क्योंकि उसी के आधार से पुरूष का पतन होता है।) नारी का दर्शन-स्पर्श तो दूर रहा उसका श्रवण- कथन भी पुरूष को पतित करने के लिये पर्याप्त है। इसलिए विवाह के द्वारा एक स्त्री के साथ एक पति का संसर्ग सीमित करके शास्त्रों में उसे ऐसा नियमबद्ध कर दिया है कि जिससे उसके जीवन में कभी असंयम आ ही न सके। यह पवित्र बन्धन लौकिक अभ्युदय तथा नि:श्रेयस् की सिद्धि के लिये सम्पन्न होने वाला एक पवित्र धार्मिक संस्कार है। एतदतिरिक्त भोगानन्तर नारी को क्यों हेय माना जाता है ?

वीर शैव दर्शन इसीलिए परब्रह्म शिव की शक्ति को सत्य मानता है। वह शिव के साथ नित्य है। जीवावस्था हो या फिर शिवावस्था दोनों (शिव और शक्ति) का साहचर्य सदैव बना रहता है। जिस प्रकार नारी भौतिक जीवन में प्राणी को आनन्दमय जीवन प्रदान करती हुई उसे संयमित करती है ठीक उसी प्रकार वह प्राणी का आध्यात्मिक जीवन भी प्रशस्त कर सकती है। यदि वह चतुर्विध पुरूषार्थों में प्रथम तीन धर्म , अर्थ तथा काम में अर्धभागिता निभा सकती है तो फिर मोक्ष में क्यों नही ? न केवल पत्नी रूप में ही इनकी अर्धभागिता है अपितु मातृरूप में भी इनकी उपादेयता है। वीर शैव ज्ञान-कर्म समन्वयवादी है अत: वह केवल अर्चना में ही षोडश मातृका नही मानता है अपितु लौकिक व्यवहार में भी षोडश माताओं को प्राथमिकता प्रदान करता है, जो श्रुति सम्मत भी है –

"स्तनदात्री गर्भदात्री, भक्ष्यदात्री गुरूप्रिया ।

अभीष्टदेवपत्नी च, पितु: पत्नी च कन्यका ॥

सगर्भजा या भगिनी, पुत्रपत्नी प्रियाप्रसु: ।

मातुर्माता पितुर्माता, सोदरस्य प्रिया तथा ॥

मातु: पितुश्च भगिनी, मातुलानी तथैव च ।

जनानां वेदविहिता, मातर: षोडश स्मृता : ॥"[25]

अर्थात् स्तनपान कराने वाली, गर्भधारण करनेवाली, भोजन कराने वाली, गुरूपत्नी, इष्टदेवता की पत्नी, पिता की पत्नी (विमाता), पितृकन्या (सौतेली बहन), सहोदरा बहन, पुत्रवधू, सासु, नानी, दादी, भाई की पत्नी, मौसी, बुआ और मामी ये सोलह प्रकार की माताएँ वेदविहित हैं। कहा भी गया है –

"कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ।"[26]

(२) सांख्य दर्शन :- सांख्य मत में सृष्टि का निरीक्षण करते हुए दो प्रधान तत्त्व पाये गये - एक विविधरूपधारी जड़ तथा दूसरा एकरस चेतन । एक को उन्होनें प्रकृति माना तथा द्वितीय को पुरूष । प्रकृति शब्द स्त्रीलिङ्गी है तथा पुरूष शब्द पुलिङ्गी । इसी शाब्दिक भेद का उपयोग कर मनीषियों ने स्त्री को प्रकृति तत्त्व का प्रतिनिधित्व करने को कहा तथा पुरूष को पुरूष तत्त्व का । कुछ विचारकों ने इसे गम्भीर स्वरूप दिया तथा माना कि स्त्री संसारासक्त होती है, वह मोक्ष की अधिकारिणी नही हो सकती । स्त्री को यदि मोक्ष पाना है तो उसे दूसरे जन्म में पुरूष होना होगा । फलत: लौकिक व्यवहार में भी स्त्री को वैसा ही माना गया । (परपुरूष के निषेध के सन्दर्भ में)"नैषधीयचरितम्" नामक संस्कृत काव्य में तो दमयंती के महल में वायु का प्रवेश तक नही था क्योंकि वायु पुलिङ्गी है ।[27] सांख्य-मत में पुरूष और प्रकृति के संयोग से इस सृष्टि की उत्पत्ति हुई है लेकिन यहाँ भी प्रकृति चेतन न होकर जड़ है । सांख्यकारिका के उदाहरण भी इस सन्दर्भ में ध्यातव्य है । तदनुसार जिस प्रकार भर्ता के द्वारा स्त्री में दोष का दर्शन हो जाने के पश्चाद् वह उसको पुन: मोहित नही कर पाती है या फिर जिस प्रकार नर्तकी नृत्य के अनन्तर पुरूष के समक्ष से पलायित हो जाती है, उसी प्रकार प्रकृति पुरूष के समक्ष स्वयं का प्रकाशन करके उससे विनिवर्तित हो जाती है –

"रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात् ।

पुरूषस्य तथात्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृति: ॥"[28]

ऐसा प्रतीत होता है कि सिद्धान्त को पुष्ट करने के लिये प्रकृति का मात्र सहारा लिया गया है, जबकि प्रत्येक कार्य की कुञ्जी तो पुरूष के ही हाथ में है।

वीर शैव मत में इस जगत की संरचना पुरूष (शिव) तथा प्रकृति (शक्ति) के संयोग से हुई है और जबतक यह सृष्टि रहेगी तबतक यह सम्बन्ध बना रहेगा। शिव के संसर्ग से शक्ति ही समस्त प्राणिजगत् को, समस्त विकारों को और अखिल गुणों को उत्पन्न करती है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा गया है –

"प्रकृतिं पुरूषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।

विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्॥"[29]

प्रकृति शक्ति है, पुरूष शक्तिमान् है। शक्ति के बिना शक्तिमान् का अस्तित्व नही और शक्तिमान् के बिना शक्ति के लिये कोई स्थान नही है। शक्ति-शक्तिमान् का अविनाभाव सम्बन्ध है। नर पुरूष का तथा नारी प्रकृति का प्रतीक है। दोनों के कर्तव्य तथा कर्मक्षेत्र पृथक्-पृथक् होने पर भी वे एक ही शरीर के दक्षिण और वाम दो अङ्गों की भाँति एक ही शरीर के दो संयुक्त भाग हैं और दोनों के कार्य भी एक दूसरे के पूरक तथा एक ही शरीर की समृद्धि, सुव्यवस्थितता, पुष्टि और तुष्टि के कारण हैं। नारी नर की पत्नी होने पर भी नर नारी का सेवक, सखा और स्वामी है। इसी प्रकार नर नारी का पति होने पर भी नारी नर की स्वामिनी, सखी तथा सेविका है। स्त्री-पुरूष में एक ही पुरूष तत्त्व, जो चेतन है समानभाव से विराजमान है और दोनों के शरीर एक ही प्रकृति तत्त्व से बने हुए हैं। दोनों की संसारासक्ति और संसार-बन्धन समान है और मोक्ष का अधिकार भी दोनो को समान ही है।

(३)चार्वाक-दर्शन :- चार्वाक-दर्शन ने तो भौतिकता की चरमसीमा की भी हद पार कर दी। तदनुसार नारी का आलिङ्गन, चुम्बनादि से जन्य सुख ही पुरूषार्थ है। **(अङ्गनाद्यालिङ्गनादिजन्यं सुखमेव पुरूषार्थ:)**[30] यहाँ भी उसको वस्तुरूप ही समझा गया है, उसकी भावनाओं को कुचला गया है तथा सामाजिकता को असंयमित करने का प्रयास किया है। चुँकि चार्वाक दर्शन अतिभौतिकतावादी होने के कारण सर्वदा ही आलोचना का पात्र रहा है अत: इस सिद्धान्त को अधिक गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है किन्तु कुछ स्वार्थी लोग ऐसे भी होते है, जो इस प्रकार के अनैतिक तथ्यों को भी नीतिगत कहते है।

वीर शैव मत में तो जिस प्रकार चन्द्र में स्थित ज्योति विश्ववस्तु को प्रकाशित करने का कार्य करती है, ठीक उसी प्रकार विमर्श नामधेया शक्ति प्रकाश रूपी ब्रह्म में स्थित है –

"यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना विश्ववस्तुप्रकाशिनी ।

तथा शक्तिविमर्शाख्या प्रकाशे ब्रह्मणि स्थिरा ॥"[31]

यह सम्पूर्ण चराचर एक ही शक्ति का प्रतिफलन है । यहाँ पर शिव और जीव दोनों की शक्ति का अद्वैत ही इसे शक्तिविशिष्टाद्वैत पद से अभिहित करता है । वह एकात्मिका शक्ति स्वयं को द्विविध करती है –स्थूलचिदचिदात्मिका तथा सूक्ष्मचिदचिदात्मिका । इसमें जीव का सम्बन्ध स्थूलचिदचिदात्मिका शक्ति से है, जहाँ पर स्थूल चिद् किञ्चिद्ज्ञत्व तथा स्थूल अचिद् किञ्चित्कर्तृत्व है । शिव सूक्ष्मचिदचिदात्मिका शक्तिविशिष्ट है, जिसमें सूक्ष्म चित् सर्वज्ञत्व तथा सूक्ष्म अचित् सर्वकर्तृत्व है । इस प्रकार जीव और शिव की स्थूल तथा सूक्ष्म चिदचिदशक्ति का अद्वैत अथवा सामरस्य ही शक्तिविशिष्टाद्वैत है । कहा भी गया है –

"एकैव शक्ति: परमेश्वरस्य, भिन्नाश्चतुर्धा व्यवहारकाले ।

पुरूषेषु विष्णु: भोगे भवानी, समरे च दुर्गा प्रलये च काली ॥"[32]

जल में जल का न्यास अथवा वह्नि में वह्नि का न्यास इस न्याय से भी यह तथ्य सिद्ध होता है । क्रियासार में तो शक्ति की परिभाषा देते हुए उसे ब्रह्म का वैशिष्ट्य ही कहा गया है –

"यथा घट इति ज्ञाने घटत्वं स्यात् विशेषणम् ।

तथा ब्रह्मणि वैशिष्ट्यं शक्तिरित्यभिधीयताम् ॥"[33]

आगम तथा श्रुतियों में भी इस तथ्य का प्रमाण मिलता है । श्वेताश्वेतरोपनिषद् में भी कहा गया है –

"परास्य शक्तिर्विविधैव श्रुयते, स्वभाविकी ज्ञानबला क्रिया च ।"[34]

"ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्, देवात्मशक्ति: स्वगुणैर्निगूढाम् ।"[35]

वह शक्ति परशिव की स्वभाविकी शक्ति है । वह शक्ति भी ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, इच्छाशक्ति आदि भेद से बहुप्रकार की है । सिद्धान्तागम में भी कहा गया है –

"मं शिवं परमं ब्रह्म, प्राप्नोति स्वभावत: ।

मायेति प्रोच्यते लोके, ब्रह्मनिष्ठा सनातनी ॥"[36]

इस प्रकार से मं अर्थात् शिव को जो स्वभावत: प्राप्त करती है, वह माया ही शक्ति है । कैवल्योपनिषद् में परमेश्वर की उमा सहायिका मानी गयी है **(उमासहायं परमेश्वरं प्रभु:)** । सत्, चित् तथा आनन्दात्मिका यह परशिवशक्ति समस्त लोक के निर्माण के लिए परशिव ब्रह्म में विद्यमान रहती है । अर्द्धनारीश्वर की अवधारणा के मूल में यही विचार उपस्थित होता है । साहित्य में भी शिव-शक्ति का अभिन्नत्व देखा जा सकता है । कालीदास कहते हैं-

"वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।

जगत्त: पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ ॥"[37]

फलत: शिव तथा शक्ति का अभेद परमार्थत: कहा जाता है, जिसको योगी और तत्त्वचिन्तक ही देख सकते हैं । आज पाश्चात्य सभ्यता शान्ति के लिए भारतवर्ष जैसे देशों की ओर देख रहा है । वहाँ के नागरिक काम स्वतन्त्रता के संसार से दु:खित होते दिख रहे हैं । भौतिकता के चरमोत्कर्ष से शान्ति को न प्राप्त होते देख उनका दु:खित होना स्वाभाविक भी है । जब व्यक्ति की बुभूक्षा स्वगृह में प्रतिदिन शान्त हो सकती है, तो उसके लिए अन्यत्र दरिद्रों जैसे भटकने से क्या लाभ ? अनेक गृहों का अन्न भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक ही होता है । संभवत: इसी विशेषता के कारण एकपत्नीव्रत या एकपतिव्रत की उपयोगिता सर्वोत्कृष्ट प्रतीत है । भारतीय सभ्यता में एक पत्नी वाला गृहस्थ ब्रह्मचारी की श्रेणी में परिगणित होता है ।

▪ वीर शैव दर्शन का राजनैतिक महत्त्व

सम्पूर्ण राष्ट्र के सञ्चालन में राजनीति का महत्त्वपूर्ण स्थान है । संभवत: इसीलिए पाश्चात्य विचारक अरस्तू ने कहा था कि राजा को दार्शनिक होना चाहिए । वीर शैव भी प्रायोगिक रूप में अपने अनुयायियों को राजनीति में समाज कल्याण के लिए प्रेरित करता है । इस धर्म के विचार से राजनीति के अवांछनीय तत्त्वों का निवारण होता है । फलत: इस धर्म के विषय में तथा इसके प्रमुख सन्त बसवेश्वर के प्रति प्रमुख राजनेताओं एवं विद्वानों के विचार द्रष्टव्य हैं -

- **डॉ० जाकिर हुसैन (भूतपूर्व राष्ट्रपति, भारत सरकार) :-** भारत के श्रेष्ठ ज्ञानी सन्तों की मण्डली में बसवेश्वर अपने सेवा कार्य तथा अपने मानवतावादी कार्यों के कारण न्यायपूर्वक यथोचित स्थान माँग सकते है ।[38]
- **श्री वी० वी० गिरि (भूतपूर्व राष्ट्रपति, भारत सरकार) :-** वीर शैव के शान्ति और विश्व भ्रातृभाव के संदेश के प्रचार करने की अत्यन्त आवश्यकता है । समारोहों का उद्देशित साङ्केतिक कदम, एकता और सौहार्द्र को भारतवासियों में ही नही, सभी मानवों में लाना है ।[39]

❖ **स्व० इन्दिरा गांधी (भूतपूर्व प्रधानमंत्री, भारत सरकार) :-** वीर शैव के सन्तों ने भक्ति और ज्ञान पर बल दिया, जिनमें बसवेश्वर ने अपने गम्भीर विचारों को जन सामान्य की भाषा में शक्ति और सौंदर्य से भरकर व्यक्त किया । उन्होनें अपने सृष्टिकर्ता की दृष्टि में मनुष्य की समानता पर बल दिया ।[40]

❖ **डॉ० एस० राधाकृष्णन् (भूतपूर्व राष्ट्रपति, भारत सरकार) :-** महात्मा बसवेश्वर श्रेष्ठ संत और समाज सुधारक थे । हमें केवल उनके उपदेशों को मानना ही नही, परंतु हमारे दैनिक जीवन में उन उपदेशों का आचरण भी करना चाहिए ।[41]

❖ **डॉ० बी० डी० जत्ति (भूतपूर्व उपराष्ट्रपति, भारत सरकार) :-** यह धर्म सहानुभूति में सबका आलिङ्गन करता है एवं दृष्टिकोण में विश्व व्यापकता को समाहित करता है । जाति भारत की सामाजिक,आर्थिक और राजनीतिक प्रगति में बहुत बड़ी बाधा है । वह हिन्दुओं के परस्पर दायित्व में बाधा उत्पन्न करती है । जाति भाग्यवाद के आधार पर नही है, परन्तु वह मुक्त चुनाव के आधार पर है । वीर शैव के इन सिद्धान्तों को बसव जैसे महान् आत्मा ने पुन: जीवित कर समाज की कुरीतियों को समाप्त करने का सफल प्रयास किया, जिसमें उनके प्रमुख तीन हथियार थें – अहिंसा, अशोषण एवं भेंट का अस्वीकार ।[42]

❖ **श्री पी० बी० गजेन्द्रगढ़कर (भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश, सर्वोच्च न्यायालय, भारत सरकार) :-** बसवेश्वर ने उपनिषद् काल के हिन्दू दर्शन शास्त्र और आचरण के प्राचीन वैभव को बलवर्धन करने का काम किया । यदि वीर शैव दर्शन को ठीक समझा जाय, और भारत के सामान्य स्त्रीपुरूष को उसकी व्याख्या सुनायें तो उससे सुख, सामाजिक समता और धार्मिक भलाई की खोज में भारत को आगे बढ़ने में मदद मिल सकती है ।[43]

❖ **डॉ० आर० आर० दिवाकर (भूतपूर्व राज्यपाल, बिहार सरकार एवं अध्यक्ष, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान) :-** शङ्कर, माध्व तथा रामानुज उत्कृष्ट योग्यता के तत्त्वज्ञानी थे । उन्होंने तत्त्वज्ञान को समाज के लिए क्रियान्वित भी किया । मार्क्स एवं ईगल्स चिन्तशील व्यक्ति थे औत लेनिन और स्टालिन क्रियाशील व्यक्ति थे । चेतन जगत् एवं कर्म जगत् परस्पर सिद्धान्त और आचरण के समान भिन्न होते हैं । आचरण के बिना सिद्धान्त शून्य में लटकने के समान है । सांराश यह है कि जीवन क्रिया है, चिन्तन नही और यही बसवेश्वर अथवा वीर शैव मत की दृष्टि है ।[44]

❖ **श्री गोविन्दनारायण (भूतपूर्व राज्यपाल, कर्णाटक सरकार) :-** आध्यात्मिक भ्रातृभाव की स्थापना के साथ धार्मिक जीवन के सर्वोच्च स्तर का अनुसरण वीर शैव मत से ही संभव है । स्त्रियों का सम्मान, जाति-प्रथा का विरोध तथा अस्पृश्यता का परित्याग ही मानवता वास्तविक शिखर पर अवस्थित कर सकता है और इसके लिए बसव जैसे

महान् वीर शैव मतानुयायियों की आवश्यकता है ।[45]

- **स्व० डॉ० डी० सी० पावटे (भूतपूर्व राज्यपाल, पञ्जाब सरकार)** :- वीर शैव ने कायक धर्म के द्वारा श्रम को महत्त्व प्रदान किया । तदनुसार कायक ही कैलास है । आज सारे देश में बसवेश्वर के जीवन और उपदेशों का परिचय कराना चाहिए । वीर शैव ने जाति-प्रथा, स्वार्थपरता और कपट के निर्मूलन के लिए किसी भी त्याग को कम नही समझा । इससे सारे दक्षिण भारत के जन-जीवन पर प्रभाव पड़ा है ।[46]
- **श्री एस० निजलिङ्गप्पा (भूतपूर्व मुख्यमंत्री, कर्णाटक सरकार)** :- वीर शैव मत ने स्त्री-पुरूषों में समानता, स्त्रीत्व का उद्धार, और सामाजिक एवं आर्थिक समता के लिए निरन्तर कार्य किया, जिसमें बसवेश्वर जैसे सन्त का नाम अग्रगण्य है । उन्होंने धर्म, जाति या जन्म के आधार पर होनेवाले शोषणों के विरूद्ध काम किया और वे किसी भी प्रकार के हिंसा के विरोधी थे ।[47]
- **स्व० डॉ० सी० डी० देशमुख (भूतपूर्व वित्तमंत्री, भारत सरकार)** :- बसवेश्वर उस प्रेरक वर्ग के है, जिसने भारत के धार्मिक विश्वास, सभ्यता और संस्कृति को समृद्ध किया । मेरे विचार में विशाल समुदाय को चाहे किसी भी जाति या वर्ग का हो, एक सामान्य विश्वास और सामान्य तत्त्व में अखण्ड रूप में बुनना ही उनकी महान साधना है ।[48]
- **स्व० के० एस० मुँशी (भूतपूर्व राज्यपाल, उत्तर प्रदेश सरकार एवं भूतपूर्व कुलपति भारतीय विद्यापीठ)** :- श्रम करना ही पूजा करना है । वीर शैव मत के उद्बोध हमारे देशवासियों के मन और हृदयों को उत्तेजित करते रहते है । बसवेश्वर के द्वारा प्रदत्त ऐसी आध्यात्मिक जागृति और नैतिक आदेश में विश्वास मात्र से ही प्राण, शक्ति, बल और सामर्थ्य हमारे देश के लिए प्राप्त हो सकते है ।[49]
- **स्व० टी० एन० मल्लप्पा (विश्रांति प्राप्त न्यायाधीश, कर्णाटक उच्च न्यायालय)** :- वीर शैव धर्म के प्रधान लक्षण है – लिङ्ग के रूप में शिव की आराधना करना, लिङ्ग धारण करना, शिव योग करना एवं वेदों से भी प्राचीन आचरण यज्ञों का विरोध करना । अत: पुरोहित रूपी दलालों की आवश्यकता मनुष्य और भगवान के बीच में नही है । सब अपनी भाषा में भगवान की उपासना कर सकते हैं ।[50]
- **स्व० डॉ० सी० पी० रामस्वामी अय्यर (तिरूवाङ्कुर राज्य के भूतपूर्व दिवान)** :- वीर शैव के पुनरूद्धारक बसवेश्वर हिन्दू समुदायों के उद्धार के लिए और उनको ऊपर उठाने तथा समानता देने के लिए सश्रम काम करने की वजह से हमेशा याद किये जाते है ।[51]
- **स्व०एल० बी० भोपटकर** :- बसवेश्वर ने वीर शैव मत को पुनरूज्जीवित किया और उसे पुन: प्रतिष्ठापित कर उसके लिए नयी व्याख्या और नये अर्थ दिये । दूसरे मतों के

साथ वे नैतिक और सामाजिक सिद्धान्त, खासकर सामाजिक समता तत्त्व और समानता के महान बोधक के स्तुत्य पद पर आसीन रहे ।[52]

- ❖ **आर्थर मल्स (इन दि ल्याड आफ लिङ्गम से) :-** बसव प्रथम भारतीय मुक्त चिन्तक थे । उन्हें भारत का लूथर कह सकते है । उनके उपदेशानुसार सभी मनुष्य जन्म से ही समान है ।[53]
- ❖ **प्रो० के० एस० श्रीकण्ठन् :-** वीर शैव के आचार्य बसव बुद्ध के समान दयालु, महावीर के समान सरल, जीसस के समान कोमल, मुहम्मद के समान धैर्यवान हमें अद्‌भुत सा दिख पड़ते है । उन्होंने अपने उपदेशों में अत्यन्त महान चिन्तक कार्ल-मार्क्स और महात्मा गांधी की पूर्व आशा की है ।[54]
- ❖ **दी टाइम्स आफ इंडिया (संपादकीय) :-** वीर शैव मत में दीक्षित बसव ने धैर्य से समाज सुधार के समग्र कार्यक्रम को उसमें स्त्री-जाति को मुक्त करने और ऊपर उठाने की बात को निर्देशक बिन्दु बनाकर रूपित किया और उसपर कार्य किया ।[55]

एतदतिरिक्त श्री कुमार स्वामीजी, श्री जयचामराजेन्द्र ओडेयार, डॉ० विनय कृष्ण गोकांक, एवं श्री सदाशिव ओडेयार आदि महान् आत्माओं ने वीर शैव दर्शन के सद्विचार के लिए सहानुभूति प्रकट की है ।[56] आधुनिक राजनीति में भी लिङ्गायत सम्प्रदाय की महत्त्वपूर्ण भूमिका है । कर्णाटक विधानसभा के मंत्रियों में अधिकांशत: वीर शैत मत में दीक्षित हैं । माननीय शिवराज पाटिल जैसे केन्द्रीय मंत्री वीर शैव मतानुयायी है । एतदतिरिक्त अनेक व्यक्ति इस मत के सूक्ष्म विचारों के माध्यम से उच्च पद पर आसीन होकर राष्ट्र और समाज की सेवा कर रहे हैं ।

▪ <u>वीर शैव दर्शन का सांस्कृतिक महत्त्व</u>

भारत सभ्यता और संस्कृति का देश है । इसमें अनेकता में भी एकता का अवलोकन होता है । विविध भाषाओं और वेष-भूषाओं के बावजूद यहाँ पर अद्‌भुत भ्रातृत्त्व अवलोकित होता है । यहाँ प्रत्येक धर्म एक दर्शन है, क्योंकि प्रत्येक धर्म में लौकिक जीवन का सम्यक् परिपालन तथा उसके मार्ग से न केवल इस धरती पर आनन्दमय जीवन अपितु उसके सम्यक् परिपालन से परब्रह्म की भी प्राप्ति होती है । वीर शैव भी ऐसा ही धर्म है । इस दर्शन (धर्म) में दान का अत्यधिक महत्त्व है । दान करना त्यागमय जीवन को प्रश्रय देता है, जिससे सामाजिक बुराईयों का निराकरण होता है । इनके आचारों में भृत्याचार भी यही दर्शाता है ।

एकात्मक स्थिति में **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** की भावना स्वयमेव ही आ जाती है और यह भावना त्यागपूर्वक जीवन का मार्ग प्रशस्त करती है । इस भावना के कारण पर्यावरण विशुद्ध होता है तथा प्रकृति के तत्त्वों का कम से कम दुरूपयोग होता है । वीर शैव मत में प्रकृति के प्रति

सम्मान की भावना है। तदनुसार प्रकृति के प्रति दास भावना रहनी चाहिए, न कि उस पर शासन करने की। आज का समाज जिस भौतिकता के चरमोत्कर्ष को विकास का नाम दे रहा है, वह विकास का भवन अनेकों पर्वतों और नदियों के शव पर स्थित प्रतीत होता है। लोभ की इस धारा में धनमात्र ही अवशेष रह गया है। सम्बन्धों का विनाश हो ही रहा है, जन्मदाता माँ-पिता भी सम्प्रति गृह में अवशिष्ट पदार्थ समझे जा रहे हैं। जनमानस नगरों की ओर पलायन करने के लिए बाध्य हैं। भूकम्पादि की सम्भावना बढ़ती जा रही है।

ऐसे समय में आवश्यकता है हमें स्वयं को जानने की क्योंकि आत्मज्ञान से अपने पराये का भेद समाप्त हो जाएगा। हम संसार के तथा संसार हमारा हो जाएगा और यह भावना भी उद्‌भूत हो जाएगी –

"रहने को घर नही है सारा जहाँ हमारा"।

वीर शैव दर्शन चुँकि ज्ञान-कर्म समन्वयवादी है, इसलिए वह मात्र ज्ञानार्जन नही करता है अपितु उस ज्ञानराशि को अनुभूत कर उस पथ पर चलने का प्रयास करता है। औषधि के ज्ञान मात्र होने से हम रोग का निवारण नही कर सकते अपितु उसका लेपन भी उतना ही आवश्यक है, जितना औषधि का ज्ञान। इसी तरह मात्र उनके ग्रन्थों में ही नारी के प्रति सम्मान या आदर नही है, अपितु वे इस मार्ग पर चलते भी हैं। वे केवल मन्त्र का जप करके उससे फलाकाङ्क्षा की कामना नही करते हैं , बल्कि वें अपनी दैनिक जीवन में भी उसका उपयोग करते हैं, जिससे उनकी शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति होती है। एतदर्थ वें पञ्चयज्ञ (तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान), अष्टावरण (भस्म, रूद्राक्ष, लिङ्ग , गुरू, मन्त्र, चर, पादोदक तथा प्रसाद), पञ्चाचार (लिङ्गाचार, सदाचार, शिवाचार, भृत्याचार और गणाचार), तथा षट्स्थल (भक्त, माहेश्वर, प्रसादि, प्राणलिङ्ग, शरण तथा ऐक्य) की साधना करते हैं। इन कर्मों में पुरूषों और स्त्रियों को समान अधिकार है। इन कर्मों से नारी और पुरूष दोनों के आन्तरिक तथा बाह्य दोषों का निवारण होता है तथा उसके सौन्दर्य में अभिवृद्धि होती है। हमारा भारतवर्ष पितृसतात्मक माना जाता है, अत: अधिकांशत: पुरूष ही समाज के नेता रहे हैं। आधुनिक युग में सुधार हो रहा है, लेकिन आज भी महिलाएँ पुरूषों की तुलना में काफी हद तक पीछे हैं। आज भी ग्रामीण लोग शिक्षा के अभाव में अल्पायु में ही अपनी बालाओं का विवाह करते हैं, जिसका परिणाम भयावह उपस्थित होता है। आज भी दहेज-प्रथा एक सामाजिक बुराई के रूप में सबके समक्ष है। आधुनिक जनमानस में अनेक व्यक्ति आज भी दहेज लेना प्रतिष्ठा का विषय मानते हैं, जिसका वीर शैव विरोध करता है। सेवाभावना से जनमानस में व्याप्त ईष्या, द्वेष, आदि दुर्भावनाओं को समाप्त किया जा सकता है। प्रत्येक कण में परब्रह्मशिव-शक्ति की भावना न केवल मानव को मानव के प्रति अपितु मानव को प्रत्येक कण के प्रति सौहार्द्र को बढ़ाती है, जिससे

विश्वबन्धुत्व की भावना को प्रश्रय मिलता है।

▪ तीर्थ-स्थलों का महत्त्व

इस धर्म के करोड़ों अनुयायी आज भी भारत के विभिन्न प्रान्तों में हैं। अकेले कर्णाटक में वीर शैव मत के ८० लाख हिन्दु हैं तथा तमिलनाडु में भी इनकी संख्या लाखों में है। भारत की संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए इनके पञ्चज्योतिर्लिङ्गों की स्थापना आपसी सौहार्द्र का अन्यतम प्रमाण है। शिव के पञ्चमुखों (सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरूष और ईशान) से उद्भूत पञ्चतीर्थ द्वादशज्योतिर्लिङ्गों के अन्तर्गत आते हैं, जिनकी स्थापना शिवस्वरूप पञ्चाचार्यों (रेवण, मरूण, एकोराम, पण्डित तथा विश्वाराध्य) ने की थी। भले ही ये पञ्च शिवलिङ्ग वीर शैव मत के हो किन्तु सम्पूर्ण सनातन परम्परा में इनको पृथक् नही माना जाता है। सम्पूर्ण सनातन धर्म में इन तीर्थों का अत्यधिक महत्त्व दृष्टिगोचर होता है।

तीर्थस्थलों के माध्यम से देश के अन्तर्गत प्रत्येक कोने से कोने तक आवागमन बना रहता है, जो राष्ट्र की अखण्डता की रक्षा तो करता ही है, परस्पर भ्रातृत्त्व का भी वर्धन करता है। वीर शैव के तीर्थ स्थल भी भारत के विभिन्न प्रान्तों में हैं - रम्भापुरी (सोमेश्वर), उज्जैनीपुरी (सिद्धेश्वर), हिमवत्केदार (रामनाथेश्वर), श्रीशैलपर्वत (मल्लिकार्जुन) तथा वाराणसी (विश्वेश्वर)। एतदतिरिक्त गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, केरल और आन्ध्रप्रदेश आदि में भी इनकी संख्या लाखों में है। भारत की संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए इनके पञ्चज्योतिर्लिङ्गों की स्थापना आपसी सौहार्द्र का अन्यतम प्रमाण है। भारतवर्ष में धार्मिक तीर्थस्थलों का अत्यधिक महत्व है। तीर्थस्थलों के माध्यम से राष्ट्र की संस्कृति प्रवाहमान रहती है। प्रत्येक कण को यदि हम शिवस्वरूप माने तो प्रकृति के प्रति प्रेम बढ़ेगा तथा पर्यावरण में होनेवाली मानव द्वारा दोहन प्रक्रिया भी नियंत्रित होगी। जहाँ पर सबकुछ अद्वैत हो जाएगा वहाँ पर क्रोध, मोह, लोभ इत्यादि दुर्गुणों का अवश्य ही नाश हो जाएगा -

"क्रोध की होइहे द्वैत बिनु द्वैत की बिनु अज्ञान।"[57]

वीर शैव के अनुयायी प्रकृति का पूर्णत: सम्मान करते हैं जो वेदों का निहितार्थ है। वेदों की सगुण तथा निर्गुण भावना दोनों का समावेश इस धर्म में प्राप्त है। शिव-शक्ति का विश्वमय तथा विश्वोत्तीर्ण होना इस तथ्य का अन्यतम प्रमाण है। वीर शैव के अनुयायी प्रकृति के प्रत्येक कण को देव तुल्य मानते हैं तभी तो नदी, वृक्ष, पर्वत, अन्न इत्यादि की पूजा करते हैं। फलत: एक ओर यह शिवशक्तिविशिष्ट परम सत्ता स्थूलत: सभेद, सक्रम, सखण्ड तथा साकार है तो दूसरी ओर वह सूक्ष्मत: अद्वैत, अक्रम, अखण्ड तथा निराकार है।

▪ शिक्षण एवं शोध संस्थान

इसके अनेक ऐसे भी स्थल हैं जहाँ पर इसकी शिक्षा तथा शोध कार्य को प्रश्रय मिलता है, इनमें जङ्गमवाड़ी मठ, वाराणसी प्रमुख है, जिसका पुस्तकालय इस विषय पर शोध कार्य करने वालों के लिए प्रसिद्ध है । यहाँ का शैव भारती शोध प्रतिष्ठान भी वीर शैव के शोधार्थियों एवं अध्येताओं के लिए अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन करके इसकी उपादेयता को उपस्थित करता है । इसी प्रक्रम में वीर शैव के प्रमुख ग्रन्थ **"सिद्धान्त शिखामणि के विविध आयामों पर विचार विमर्श"** नामक राष्ट्रिय संगोष्ठी का आयोजन भी दिनाङ्क १५ अक्टूबर से १७ अक्टूबर १९९७ ई० को किया गया था । जिनमें भारत के प्रमुख विद्वानों ने वक्ता के रूप में भाग ग्रहण किया । जिनके सद्विचार **"सिद्धान्तशिखामणि मीमांसा"** अभिधान से शैव भारती शोध प्रतिष्ठान से ही प्रकाशित है । एतदिरिक्त काशी हिन्दू विश्विद्यालय, वाराणसी के धर्मागम विभाग के अन्तर्गत वीरशैवागम विभाग की भी स्थापना की गई है, जहाँ पर वीर शैव के प्रमुख ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन होता है । साथ ही संपूर्णानन्द संस्कृत विश्विद्यालय, वाराणसी में भी वीर शैव के ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन होता है । कर्णाटक राज्य में भी शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन पर क्रमिक शोध कार्य के लिए मेलकोट, जिला माण्ड्या में एक संस्था का निर्माण किया गया है ।[58] बसव समिति बेन्गलूरू ने भी वीर शैव मत के अध्ययन-अध्यापन में विशेष रूचि प्रकट करते हुए अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन किया है, जो वीर शैव के मतों को पुष्ट करते हैं । तदनुसार यह समिति दिल्ली में बसव अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र के निर्माण का प्रस्ताव एवं मई १९७६ से **"बसव जर्नल त्रैमासिक"** का भी प्रकाशन कर रही है ।[59]

▪ वीर शैव दर्शन की आर्थिक स्थिति

जिस धर्म में परिश्रम को अत्यधिक महत्त्व दिया जाय, उसको कभी भी आर्थिक तंगी का सामना ही नही करना पड़ेगा । वीर शैव मत के अनुयायी परिश्रमी होते हुए "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा:" की अवधारणा पर विश्वास करते हैं । इस सम्प्रदाय में दान का अत्यधिक महत्व है । दान करना त्यागमय जीवन को प्रश्रय देता है जिसके सामाजिक बुराईयों का निराकरण होता है । इनके पञ्चाचारों में भृत्याचार की भावना भी यही दर्शाती है । फलत: उन्हें अधिकांशत: आर्थिक अल्पता का सामना नही करना पड़ता है, जो इस धर्म के लिए गौरव की बात है । आज जबकि प्रत्येक राष्ट्र आर्थिक स्थिति के कारण चिन्तित है, ऐसे में आवश्यकता है वीर शैव की आर्थिक प्रक्रिया वाली पद्धति अपनाने की, जिसमें परिश्रम के बिना अन्न ग्रहण करने का अधिकार नही है । यदि ऐसा होगा तो हम पुन: एक दिन "सोने की चिड़ियाँ" इस अभिधान से विश्व के पटल पर उपस्थित होंगे ।

▪ वीर शैव मत की दार्शनिक स्थिति

वीर शैव दर्शन ज्ञान-कर्म समुच्चयवादी है । यहाँ ज्ञान के साथ कर्म की उपादेयता भी अवलोकित होती है । इसकी तत्त्वमीमांसा में परिगणित छत्तीस तत्त्व दर्शन की व्यापकता को दर्शाते हैं । साध्य की प्रमुखता के कारण इस दर्शन में प्रमाणमीमांसा पर अत्यल्प ध्यान अवलोकित होता है । इस पर पर्याप्त शोध की अपेक्षा है । इस दर्शन में सबसे अधिक आचरण पक्ष (आचारमीमांसा) पर ध्यान दिया गया है, जिसके कारण प्रत्येक वीर शैव मतानुयायी आचारवान होता है । कहा भी गया है कि ज्ञानी को आचारवान होना चाहिए ।

▪ वीर शैव मत की आध्यात्मिक स्थिति

यह दर्शन प्रकृति के प्रत्येक कण को परब्रह्मशिव स्वरूप सत्य मानता है । वीर शैव मतानुयायी सर्वप्रथम जनसमुदाय की सेवा भावना से अपने हृदय में दासोऽहं की भावना जागृत करता है । तत्पश्चात् इस संसार की सगुण भावना का परित्याग कर शनैः शनैः शिवोऽहं को प्राप्त होता है । एतदर्थ वह पञ्चाचार, षड्स्थल, अष्टावरण एवं पञ्चयज्ञों का प्रतिदिन अनुपालन करता है, जिससे उसे आध्यात्मिक शान्ति का अनुभव होता है । प्रकृति के प्रत्येक कण में परब्रह्म शिव की भावना से जीवन के सम्पूर्ण दुर्गुणों का विनाश स्वयमेव हो जाता है । अतः व्यक्ति को ऐसे धर्म का अनुपालन अवश्य करना चाहिए, जो प्रत्येक धर्म की अच्छाईयों को अपने आभ्यन्तर में समेटे हुए हो ।

सन्दर्भिका :-

---

[1] श्रीमद्भगवद्गीता, ५/७ ।

[2] वही, ६/८ ।

[3] नीति समीक्षा, पृष्ठ १७ ।

[4] हिन्दी एवं कन्नड़ साहित्य की प्रमुख धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ २३१ ।

[5] भृगुसंहिता, ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य पृष्ठ २३ ।

[6] ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, भूमिका पृष्ठ ३४ ।

[7] मनुस्मृति, ७/९ ।

[8] वही. भूमिका पृ.१७९ ।

[9] वही. ।

[10] हिन्दी एवं कन्नड़ साहित्य की प्रमुख धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ २२९ ।

[11] सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा पृष्ठ ३८५—३९३ ।

[12] हिन्दी एवं कन्नड़ साहित्य की प्रमुख धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ २२९ । सिद्धान्तशिखामणि ।

[13] सिद्धान्तशिखामणि, भूमिका, पृष्ठ १९ ।

[14] ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, भूमिका पृ. १८० ।

[15] स्त्री योषिदबला योषा नारी सीमन्तिनी वधूः । अमरकोश,२/ (मनुष्यवर्ग) २ ।

[16] सांख्य दर्शन, डा० रामनाथ झा, पृष्ठ ४८ ।

[17] स्कन्दपुराण, ब्रह्मखण्ड (धर्मारण्यखण्ड) अध्याय ७ ।

[18] शक्तिसंगमतन्त्र, काली खण्ड, तृतीय पटल १४२-१४३ पृष्ठ ३९-४० ।

[19] वही, एकादश पटल ३२ पृष्ठ १२३ ।

[20] ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, भूमिका, पृष्ठ ५६ ।

[21] क्रियासार भाग १ पृष्ठ ३४, रामप्रश्न पृष्ठ ५६ ।

[22] ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, भूमिका पृष्ठ ३४ ।

[23] सिद्धान्तशिखामणि, ५/१५ ।

[24] ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, भूमिका, पृष्ठ १ ।

[25] वही, भाग १, पृष्ठ २४३, ब्रह्मवैवर्तपुराण, गणेश०, १५ ।

[26] दुर्गासप्तशती, देव्यापराधक्षमापनस्तोत्र, श्लोक संख्या २ ।

[27] स्त्री शक्ति, विनोबा, पृष्ठ १३ ।

[28] सांख्यकारिका, श्लोक संख्या, ५९ ।

[29] श्रीमद्भगवद्गीता, १३/१९ ।

[30] सर्वदर्शनसंग्रह, चार्वाक दर्शन , पृष्ठ ५ ।

[31] सिद्धान्तशिखामणि २०/४ पृष्ठ २०२ ।

[32] दुर्गार्चनपद्धतिः, भूमिका १ ।

[33] क्रियासार भाग १/९३-९६ ।

[34] श्वेताश्वतरोपनिषद्, ६-७ ।

[35] वही, १-२ ।

[36] ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य, पृष्ठ ३८२ ।

[37] रघुवंशम्, १/१ ।

[38] बसव दर्शन, पृष्ठ १२७ ।

[39] वही ।

[40] वही ।

[41] वही, पृष्ठ १२८ ।

[42] वही, पृष्ठ ३-७ ।

[43] वही, पृष्ठ ४३ ।

[44] वही, पृष्ठ ४६ ।

[45] वही, पृष्ठ २२ ।

[46] वही, पृष्ठ १२८ ।

[47] वही, पृष्ठ १२९ ।

[48] वही ।

[49] वही, पृष्ठ १३० ।

[50] वही, पृष्ठ ६४ ।

[51] वही, पृष्ठ १३० ।

[52] वही, पृष्ठ १३१ ।

[53] वही ।

[54] वही, पृष्ठ १३२ ।

[55] वही, पृष्ठ १३१।

[56] वही, पृष्ठ १२७-१३२।

[57] रामचरितमानस, पृष्ठ १८९।

[58] संस्कृत एवं अभिनव भारत, पृ. ६६।

[59] बसव दर्शन, पृष्ठ २३।

उपसंहार

उपसंहार

संसार के किसी भी कार्य या कारण का यदि हम विचार करें तो यह तथ्य उपस्थित होगा कि इसका निर्माता कोई न कोई है। प्रकृति निर्मित एवं मानव निर्मित (कृत्रिम) वस्तुएँ हमारे चारो ओर दृष्टिगोचर होती हैं। जिन्हें हम मानव निर्मित या विज्ञान निर्मित वस्तुएँ मानकर उसके प्रति कृतज्ञ होते हैं, वस्तुत: वें मानव निर्मित या विज्ञान निर्मित न होकर प्रकृति निर्मित ही है। मानव भी प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं की रूप-रेखा में ही परिवर्तन करके नवीन वस्तु निर्मित करने का दावा प्रस्तुत करता है। प्रकृति भी क्या स्वयमेव इन वस्तुओं को प्रकट करती हैं या इसके पृष्ठ में कोई और शक्ति कार्य कर रही होती है ? जिन स्थूल वस्तुओं को हम इस सृष्टि के अन्तर्गत देखते हैं, वें वस्तुयें कुछ काल के पश्चात् परिवर्तित हो जाती हैं। स्थूल दृष्टि में इसका तात्पर्य है कि सृष्टि की प्रत्येक प्रक्रिया परिवर्तित एवं क्षणिक है। प्रश्न यह भी उपस्थित होता है कि यह परिवर्तन या क्षणिकता भी कही न कही जाकर समाप्त हो जाती होगी, अर्थात् कोई तो ऐसी वस्तु या सत्ता होगी जो परिवर्तित न होती होगी, जो सबका कारण तो होती होगी किन्तु उसका कारण कोई नही होता होगा। इस प्रकार जो प्रकृत्ति का आविर्भाव करके उसके प्रत्येक तत्त्वों का नियोजन करती है, जो अकारण है, जिसका ज्ञान हो जाने से किसी और ज्ञान की आवश्यकता नही रह जाती एवं जो सृष्टि के प्रत्येक कण-कण में विद्यमान है, उसी एकमात्र सत्ता को हमारे शास्त्रों ने परब्रह्म की संज्ञा प्रदान की है। उस परब्रह्म का भिन्न-भिन्न अभिधान अपने अपने मति के अनुसार प्रत्येक दर्शनों ने उपस्थित किया है। किसी ने नारायण को परब्रह्म कहा है, तो किसी ने शिव को। ईसाई धर्म में भी "GOD" तथा इस्लाम धर्म में अल्लाह इसके वाचक है। सम्पूर्ण मानव का एक ही धर्म होना चाहिए मानवता किन्तु क्षेत्र, काल एवं मति भिन्नता के मिथ्या आरोपण के कारण आज प्रत्येक मानव न केवल प्रकृति का अपितु स्वार्थ के लिए मानव मात्र का भी शत्रु बन बैठा है। प्रत्येक धर्म में मानव के धर्म का वर्णन किया गया है किन्तु वह धर्म उस मानवता के लिए कितना उचित और कितना घातक है, यह एकमात्र अनुभव से ही जाना जा सकता है। **"अनुभव: तु अन्त्यं प्रमाणम्"** का परित्याग कर आज का शिक्षित मानव भी इन तथ्यों पर विश्वास नही कर रहा है। आधुनिक समाज में उसकी दृष्टि विकसित कही जाती है, जो आत्मा परमात्मा की बातें नही करता है। जो विदेशों से शिक्षा प्राप्त करके भारत की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं नैतिक व्यवस्था का सञ्चालन करता है, उसे अच्छा शिक्षित माना जाता है। वह संसार को यह तो बताता है कि इस औषधि से ये लाभ हैं किन्तु उनसे हानियों का वर्णन नही करता। वों जानता है कि यदि हम इसके हानियों का वर्णन करेगें तो हमारा

प्रभुत्व स्थापित नही हो पायेगा । हमारा वैदिक समाज इसलिए उन्नत था क्योंकि हम विदेशों में पढ़ने नही जाते थे । हम अपने गृह की समस्या का समाधान अपने गृह में ढूंढते थे । हम विदेशों के नियम अपने ऊपर नही लागू करते थे । हमारी नदियाँ विशुद्ध थीं । जहाँ नदियों को माँ का स्थान नही दिया जाता हो, वहाँ के लोग तो अपना मल नदी में प्रवाहित ही करेगें । यह हमारे राष्ट्र के लिए अत्यधिक दु:ख का विषय है कि हमने उनके प्रत्येक कार्यों का अन्धानुकरण प्रारम्भ कर दिया है । जिससे भारत की प्रत्येक व्यवस्था की नींव हिलने लगी है । भारत का अपना अस्तित्व विदेशों के भौतिक विकास की कान्ति में धूमिल होता दिख रहा है । यह भी कहा जा सकता है कि हमारे ऊपर विदेशी आक्रमण हुए, जिसके कारण हमने उनकी सभ्यता को आत्मसात किया किन्तु अब तो हमें अपना अस्तित्व अन्वेषण करने की आवश्यकता है । जो भारत कभी एकता और अखण्डता का प्रतीक माना जाता था आज उसी देश में प्रतिदिन नए राज्य बनाए जाने की मांग बढ़ रही है । आगे चलकर यही राज्य पृथक् देश की भी मांग कर सकते हैं, जैसा की विदेशों के प्रतिनिधि चाहते हैं । आज भारत की सामाजिक व्यवस्था पर ग्रहण लगने जा रहा है । नगरों की ओर पलायनवादिता ने कुटुम्ब-जनों के महत्त्व को दूर कर दिया है । इन सभी समस्याओं से दु:खी होकर मनुष्य आध्यात्म की शरण में जाना चाहता है । एतदर्थ कोई कोई अरण्यवासी हो जाता है तो कोई पर्वतवासी तो कोई इसी समाज में रहकर दर्शन रूपी शस्त्र से इन समस्याओं को समाप्त करता है । वीर शैव भी ऐसा ही दर्शन (धर्म) है, जो परिश्रम के माध्यम से इन समस्याओं का समाधान अपने राष्ट्र या समाज के अन्दर ही ढूँढता है ।

यह परम्परा वैदिक होती हुई भी प्रमुखतया आगमिक है । इसने शक्तिविशिष्टशिव को ही परब्रह्म की संज्ञा प्रदान की है । इस परब्रह्म के दो स्वरूप दृष्टिगोचर होते है – प्रथम शिव निर्गुण, निराकार रूप में सृष्टि के प्रत्येक कण में व्याप्त शक्ति सहित है तो द्वितीय शिव पौराणिक आख्यानों की भाँति शाप और वरदान का दाता है । उसके ऐश्वर्य का वर्णन स्वर्ग की भाँति भी किया गया है । सिद्धान्त शिखामणि में शिव का जो स्वरूप वर्णन किया गया है, वह कही सगुण तो कही निर्गुण दृष्टिगोचर होता है । इसका कारण यह है कि सगुण भक्ति साधारण जन के लिए सरल पद्धति है किन्तु वें साधारण जन केवल सगुण को ही अन्तिम सत्य न मान लें इसलिए निर्गुण भक्ति का भी नियोजन किया गया है, जो विशुद्ध ज्ञान का प्रतीक है । निर्गुण भक्ति ही ज्ञान का चरमोत्कर्ष है । सिद्धान्त शिखामणि में जो शिव पार्वती सहित सिंहासन पर विराजमान हैं एवं जिनके शाप से शिवगण (शीघ्रतावशात् दारूक को लाङ्घने के कारण) उनके गण रेणुक को भूलोक पर अवतार लेना पड़ा । शिवस्वरूप वें रेणुक ही सिद्धान्त-शिखामणि के अनुसार वीर शैव के संस्थापक है । इस प्रकार इस शाप के प्रदाता शिव सगुण ही दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु सिद्धान्त शिखामणि के अन्य अध्यायों में जो उनके स्वरूप का वर्णन हैं, तदनुसार वें निर्गुण एवं निराकार है और वही उनका वास्तविक स्वरूप है ।

परम्परा में शिव के पञ्चमुखों (सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरूष एवं ईशान) से आविर्भूत इन पञ्चाचार्यों (रेवणाराध्य, मरूळाराध्य, एकोरामाराध्य, पण्डिताराध्य एवं विश्वाराध्य) ने ही वीर शैव मत की स्थापना की। तत्पश्चात् देवरदासिमय्य एवं बसवेश्वरादि शिवाचार्यों से लेकर डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य तक यह परम्परा अनवरत गतिमान है। इसमें श्रम को अत्यधिक महत्त्व, गुरू का सम्मान, प्रकृति के प्रत्येक कण को शिवतत्त्व मानना, जाति-प्रथा एवं दहेज-प्रथा जैसे कुरीतियों का उन्मूलन किया जाता है। इन सब समस्याओं ने आधुनिक समाज को प्रदूषित करने का यत्न किया है, अत: आधुनिक समाज में वीर शैव दर्शन प्रासङ्गिक है।

वीर शैव मत का द्विविध अध्ययन हो सकता है - एक धार्मिक दृष्टिकोण से एवं द्वितीय दार्शनिक दृष्टिकोण से। धार्मिक दृष्टिकोण में शिव का सगुण स्वरूप उद्घाटित होगा किन्तु दार्शनिक दृष्टिकोण में उसका तात्त्विक निर्गुण स्वरूप ही उद्घाटित होगा। प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध में शिव के तात्त्विक स्वरूप का वर्णन किया गया है। वह तात्त्विक शिव ही पञ्चकृत्यों (सृष्टि, स्थिति, संहार, अनुग्रह एवं तिरोधान) के माध्यम से अपना ही विस्तार करता है और सम्पूर्ण छत्तीस तत्त्वों के जगत् का आविर्भाव होता है।

वीर शैव मत में सृष्टि-प्रक्रिया का क्रम निम्नलिखित है :- शिवतत्त्व से शक्तितत्त्व का आविर्भाव होता है। यही शक्तितत्त्व सदाशिवतत्त्व का रूप लेकर उस तत्त्व को ईश्वर तत्त्व में परिणत कर देती है। इस ईश्वर तत्त्व से सद्विद्या तत्त्व का आविर्भाव होता है। इस प्रकार ये पञ्च तत्त्व शुद्धतत्त्व के अभिधान से अभिहित होते हैं, क्योंकि इनमें मलों एवं माया का लेशमात्र भी संसर्ग नही होता है। सद्विद्या ही माया का रूप लेकर पञ्च कञ्चुकों से युक्त हो जाती है, जिससे पुरूष का सर्वज्ञत्व किञ्चिज्ञत्व में (विद्या), नित्यत्व अनित्यत्व में (काल), पूर्णत्व अपूर्णत्व में (राग), व्यापकत्व अव्यापकत्व में एवं सर्वकर्तृत्व से किञ्चित्कर्तृत्व (कला) में परिणत हो जाते हैं। ये (माया, काल, नियति, कला, विद्या, राग तथा पुरूष) सप्त तत्त्व शुद्ध एवं अशुद्ध तत्त्व दोनो होते हैं, अत: इन्हें शुद्धाशुद्ध तत्त्व कहा जाता है। पुरूष से प्रकृति का आविर्भाव होता है एवं प्रकृति से शेष त्रयोविंशति तत्त्वों का उद्भव होता है। इस प्रकार प्रकृति से मन, बुद्धि एवं अहङ्कार ये तीन अन्त:करण, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, घ्राण तथा जिह्वा ये पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, वाक्, पाणि, पाद, पायु एवं उपस्थ, ये पञ्च कर्मेन्द्रियाँ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध ये पञ्च तन्मात्रा, आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी ये पञ्च महाभूत उद्भूत होते हैं। जिस प्रकार इनका क्रम से उद्भव होता है, उसी प्रकार क्रम से ही इनका तिरोधान भी हो जाता है। शिव से पृथ्वी पर्यन्त जिस सृष्टि का विस्तार होता है, पृथ्वी से शिव पर्यन्त उसी सृष्टि का सङ्कोच भी होता है। इस प्रकार सृष्टि शिवातिरिक्त और कुछ नही है, फलत: शिव की विकास और सङ्कोच रूपी सृष्टि वीर शैव मत में सत्य मानी जाती है, जिसका रूपान्तरण होता है, नाश नही। हमारी दृष्टि में रूपान्तरण भी शिव की लीला का ही प्रतिफलन है, क्योंकि परब्रह्म होने के कारण वही नियन्ता है। इस शिवतत्त्व को हम भले

किसी भी रूप में अनुभूत करते है, उसके परब्रह्मत्व या शिवत्व का ह्रास नही होता है, क्योंकि तदतिरिक्त इस सृष्टि में कुछ भी नही है।

आधुनिक समाज में इन सिद्धान्तों का अनुपालन करने की अत्यन्त आवश्यकता है। जिन सद्विचारों से पुरा काल में हमारे महर्षियों ने समाज को उचित दिशा-निर्देश दिया था, उन आदेशों का अनुपालन आज भी प्रासङ्गिक है। जब हमें यह अनुभव हो जाएगा कि सृष्टि का कोई भी कण हमसे पृथक् नही है तो फिर हमें सर्वत्र अपना रूप ही दृष्टिगोचर होने लगेगा, फिर हम किसी से भी द्वेषादि दुर्गुणों की भावना अपने मन में प्रकट नही होने देगें। हमें जाति-प्रथा, दहेज-प्रथा एवं भ्रष्टाचार जैसे सामाजिक दुर्गुणों से विजय प्राप्त करने में सहायता प्राप्त होगी। इन सिद्धान्तों के ज्ञान मात्र का होना ही आवश्यक नही है, अपितु उस ज्ञान का आचरण भी अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि औषधि के ज्ञान के साथ ही उसका ग्रहण या लेप भी आवश्यक है तभी हम रूग्णता को समाप्त कर सकते है अन्यथा केवल ज्ञान या केवल कर्म लक्ष्य प्राप्ति में सहायक नही हो सकता है। भौतिक उदाहरण में हम ज्ञान को पति एवं कर्म का पत्नी मान सकते है, इन दोनो के साहचर्य से ही सम्पूर्ण जीवन आनन्दित होता है। कहा जाता है कि जिसको ज्ञान हो जाता है, वह सहज ही समाज में रहकर कर्म में प्रवृत्त हो जाता है और जनमानस में व्याप्त अज्ञान को दूर करने का प्रयत्न करता है। आचार्य शङ्कर, महात्मा बुद्ध, रामकृष्ण परमहंस, बसवेश्वर एवं विवेकानन्द जैसे विद्वान् इसके ज्वलन्त उदाहरण है। जो विद्वान् होकर भी कर्म को हेय मानता है, उससे बड़ा अज्ञानी इस सृष्टि में नही है। बसवेश्वर का कहना था कि कोई भी कार्य छोटा या बड़ा नही होता, यदि वह कार्य भगवान के प्रति समर्पण भाव से किया जाय। आज प्रत्येक विषय पर अनेकों शोध हो रहे हैं किन्तु वें व्यवहार को कितना प्रभावित करते हैं, सम्प्रति यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

जो हमारे दैनिक जीवन का नियोजन समुचित रूप से करता है, जिससे प्रकृति का अत्यल्प दुरूपयोग होता है, जिससे **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** की भावना स्वयमेव आ जाती है, जिससे हमारे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन का निर्वाह सुचारू रूप से हो जाता है एवं जो त्याग एवं प्रेम की प्रतिमूर्ति है, यह अत्यधिक दु:ख का विषय है कि हम ऐसे ज्ञान या धर्म को प्राथमिकता न देकर उसे अध्ययन-अध्यापन से दूर रखना चाहते हैं। जिस विद्या का आविर्भाव पचास या सौ साल पहले हुआ है, उस ज्ञान के प्रति हमारी अत्यधिक श्रद्धा है और जो हजारों वर्षों की तपस्या का अनुभूत परिणाम है, उस ज्ञान को हम भूलना चाहते हैं। हम विदेशों के ज्ञान को ही प्राथमिकता प्रदान कर रहे हैं जो अत्यधिक चिन्ता का विषय है। युवा वर्ग देश का कर्णधार कहा जाता है। इस वर्ग में स्वराष्ट्र के प्रति जागरूकता का अभाव है। जन-समुदाय की सङ्कुचित भावना का प्राबल्य होता जा रहा है। आज व्यक्ति अपनी भूमि की सीमा को ही अपना राष्ट्र समझता है और उसके लिए अपने भ्राता एवं पिता आदि की हत्या जैसे कुकृत्य भी करने के लिए तत्पर रहता है। वीर शैव दर्शन के मतानुसार जब हमारे अन्त:करण में त्याग पूर्वक भोग की भावना जागृत होगी तभी हम इन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक आदि दुर्गुणों से स्वंय को या फिर समाज को बचा पायेगें। जब हमें यह ज्ञात होगा कि हमारे और वृक्ष में कोई अन्तर नही है, तब हम उसे काटेगें ही नही। प्रकृति के अत्यल्प दुरूपयोग से विश्व के समक्ष उपस्थित बड़ी से बड़ी समस्या का निदान हो

सकता है किन्तु यदि हमने अपने को प्रकृति का नियन्ता मान लिया तो प्रकृति भी हमें अपनी स्थिति का भान अवश्य कराएगी । आधुनिक विज्ञान ने अत्यधिक उपलब्धि प्राप्त कर ली है किन्तु आज भी वह प्रकृति के इन रहस्यों को सुलझाने में असमर्थ है । केवल इतनी सी उपलब्धियों पर कई विद्वान विज्ञान को भगवान की भी संज्ञा देते हुए वास्तविक भगवान के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न उपस्थित करते हैं, यह दु:ख का विषय है । शिवातिरिक्त कोई भी सर्वज्ञ नही हो सकता, जब तक जीव शिवत्व को प्राप्त नही होता तब तक वीर शैव मतानुसार वह सर्वज्ञ नही हो सकता । **"दासोऽहं"** से **"शिवोऽहं"** तक की यात्रा में न केवल मानव जाति का कल्याण है अपितु सृष्टि के प्रत्येक कण के प्रति सम्मान भावना अभिव्यकत होती है । आवश्यकता है हमें आत्मज्ञान की । जिसका ज्ञान हो जाने पर सृष्टि के किसी और ज्ञान की आवश्यकता नही रह जाती है क्योंकि वही ज्ञान का चरमोत्कर्ष है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची (Selected Bibliography) :-

(A)प्रारम्भिक स्रोत (Primary Source) :-

(a) साक्षात् स्रोत (Direct Source) :-

- ***ईशावास्योपनिषद् (वीरशैवभाष्यसहित)*** :- (अनुवादक एवं सम्पादक) जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९६ ई० ।
- ***केनोपनिषद् (वीरशैवभाष्यसहित)*** :- (अनुवादक एवं सम्पादक) जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९६ ई० ।
- ***कैवल्योपनिषद् (सदाशिवभाष्यसहित)*** :- सदाशिवशिवाचार्य, (अनुवादक एवं सम्पादक) जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, २००६ ई० ।
- ***तन्त्रराजतन्त्र*** :- लक्ष्मणशास्त्री एवं आर्थर अवलान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९२६ ई० ।
- ***पञ्चवर्णमहासूत्रभाष्यम्*** :- सिद्धनञ्जेश शिवाचार्य, (अनुवादक एवं सम्पादक) व्रजवल्लभ द्विवेदी, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, २००४ ई० ।
- ***ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य (भाग १-२)*** :- श्रीपतिपण्डितभगवत्पादाचार्य, ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट्, मैसूर, कर्णाटक, प्रथम संस्करण, १९७७ ई० ।
- ***ब्रह्मसूत्रश्रीकरभाष्य(भाग १-३)*** :- श्रीपतिपण्डितभगवत्पादाचार्य, (सं०) सी० हयवदना राव, अक्षय प्रकाशन, नई दिल्ली, पुन: प्रकाशित २००३ ई० ।
- ***मुण्डकोपनिषद् (वीरशैवभाष्यसहित)*** :- (अनुवादक एवं सम्पादक) जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, २००४ ई० ।
- ***महानयप्रकाश:***- (सम्पादक) आचार्य कृष्णानन्द सागर, श्रीशिवोऽहं सागर ग्रन्थमाला प्रकाशन, प्रथम संस्करण, १९८५ ई०।

- **श्रीमद्भगवद्गीतावीरशैवभाष्य** :- (भाष्यकर्ता) डॉ० टी० जी० सिद्धाप्पाराध्य, प्रकाशक श्रीजगद्गुरूमल्लिकार्जुनमुरूघराजेन्द्रमहास्वामि, चित्रदुर्ग, श्री जगद्गुरू उरूघराजेन्द्र विद्यापीठ ग्रन्थमाला का द्वितीय पुष्प, प्रथम मुद्रण, १९६५ ई० ।
- ***शिवाद्वैतमञ्जरी*** :- स्वप्रभानन्द शिवाचार्य, (सम्पादक) डॉ०चन्द्रशेखरशर्मा हिरेमठ, (प्रकाशक) संस्थानजङ्गमवाड़ी मठ, वाराणसी, प्रथम संस्करण,१९८६ ई० ।
- ***शिवाद्वैतदर्पण*** :- भगवत्पादशिवानुभव शिवाचार्य, (सम्पादक) वे० ब्र० श्री० सिद्धान्तसिद्धबसवशास्त्रि, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९९ ई० ।
- ***शिवपञ्चविंशतिलीलाशतकम्*** :- वीरभद्रशर्मा, (सम्पादक) व्रजवल्लभ द्विवेदी, (लीलासंग्राहक) डॉ० ददन उपाध्याय, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, २००६ ई० ।
- ***शिवरहस्य*** :- (सम्पादक) वे० स्वामिनाथ आत्रेय, तञ्जुपुरी सरस्वती महालय ग्रन्थमाला संख्या-१३५ ।
- ***शक्तिविशिष्टाद्वैततत्त्वत्रयविमर्श: (डी० लिट्० थिसिस)*** :- डॉ०चन्द्रशेखर शिवाचार्य, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९६ ई० ।
- ***श्वेताश्वेतरोपनिषद् (वीरशैवभाष्यसहित)*** :- (भावार्थदीपिकाकार एवं सम्पादक) जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, २००६ ई० ।
- ***सिद्धान्तसारावलि*** :- त्रिलोचन शिवाचार्य, (अन्वयार्थकार) मरूलसिद्धशिवाचार्य, (विस्तरार्थकार एवं सम्पादक) व्रजवल्लभ द्विवेदी, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९८ ई० ।
- ***सिद्धान्तप्रकाशिका*** :- सर्वात्मशम्भु, (सम्पादक) जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९६ ई० ।
- ***सिद्धान्तशिखोपनिषद्*** :- उमचिगिशङ्करशास्त्रिविरचित, (अनुवादक एवं सम्पादक) जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९८ ई० ।
- ***सिद्धान्तशिखामणि*** :- शिवयोगिशिवाचार्य, (हिन्दीव्याख्याकार) प्रो० डॉ० राधेश्याम चतुर्वेदी, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, २००६ ई० ।

आगम

- ***कारणागम (क्रियापाद)*** :- (सम्पादक) प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९४ ई० ।
- ***कामिकागम :-*** श्री चे. स्वामिनाथाचार्य, दक्षिणभारतार्चक सङ्घ, तम्बुच्चेटी वीथी, मद्रास, १९७५ ई० ।
- ***चन्द्रज्ञानागम (क्रिया एवं चर्यापाद)*** :- (सम्पादक) व्रजवल्लभ द्विवेदी, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९४ ई० ।
- ***देवीकालोत्तरागम*** :- (अनुवादक एवं सम्पादक) व्रजवल्लभ द्विवेदी, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, २००० ई० ।
- ***पारमेश्वरागम*** :- (सम्पादक) व्रजवल्लभ द्विवेदी, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९५ ई० ।
- ***मकुटागम (क्रियापाद एवं चर्यापाद) :-*** (सम्पादक) व्रजवल्लभ द्विवेदी, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९४ ई० ।
- ***मृगेन्द्रागम :-*** एन. आर. भट्ट, इन्स्टीट्यूट् फ्रेन्सिस इन्डोलोजी, पुदुच्चेरी, १९६२ ई० ।
- ***रूद्राध्याय*** :- आनन्दसंस्कृताग्रन्थावलि, १९९७ ई० ।
- ***सूक्ष्मागम (क्रियापाद)*** :- (सम्पादक) व्रजवल्लभ द्विवेदी, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९४ ई० ।

(b) असाक्षात् स्रोत (Indirect Source) :-

- ***अनुभवसूत्र*** :- मायिदेव, (सम्पादक) गजाननशास्त्रिमुसलगाँवकर, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९८ ई० ।
- ***अनुभवसूत्र :-*** मायिदेव, प्रत्यभिज्ञा प्रकाशन, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९८७ ई० ।

- ***अष्टप्रकरण*** :- संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९८८ ई० ।
- ***क्रियासार*** :- नीलकण्ठ शिवाचार्य, मैसूर विश्वविद्यालय प्रकाशन, प्रथम संस्करण, १९५४ ई० ।
- ***कृत्यसागर*** :- श्रीरत्नपाणि, (भूमिका) महाप्रभुलालगोस्वामी, मिथिला अनुसन्धान समिति, १९७७ ई० ।
- ***गणकारिका*** :- आचार्य भासर्वज्ञ, ओरियन्टल् इन्स्टीट्यूट् बड़ौदा, द्वितीय संस्करण, १९६६ ई० ।
- ***तंत्रालोक (१-३ भाग)*** :- अभिनवगुप्त, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९८६ ई० ।
- ***ब्रह्मसूत्रशक्तिभाष्य*** :- पञ्चानन तर्करत्न भट्टाचार्य, (भूमिकालेखक) गोपीनाथ कविराज, प्रथम भाग, परिमल प्रकाशन, नई दिल्ली-२, संस्करण २००५ ई० ।
- ***ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य*** :- (१-५ भाग) अनुवादक यतिवर भोलेबाबा, भूमिका डॉ० रामकरण शर्मा, प्राक्कथन- प्रो० राममूर्ति शर्मा, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-२००९ ई० ।
- ***बसव दर्शन*** :- बसव समिति बेन्गलूरू प्रकाशन, प्रथम संस्करण, १९८३ ई० ।
- ***वामकेश्वरी मत*** :- आचार्य कृष्णानन्द सागर, शिवोऽहं सागर ग्रन्थमाला प्रकाशन वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९८७ ई० ।
- ***वातुलशुद्धाख्यतन्त्र*** :- प्रत्यभिज्ञा प्रकाशन, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९८७ ई० ।
- ***वातुलशुद्धाख्य तन्त्र*** :- (सम्पादक) व्रजवल्लभ द्विवेदी, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, २००४ ई० ।
- ***वीरशैवचन्द्रिका*** :- मरितोण्डदार्य, मरूसा वीरमठ प्रकाशन, हुबल्ली, प्रथम संस्करण, १९३६ ई० ।
- ***वीरशैवसदाचारसंग्रह*** :- बारदमल्लप्पवसप्पा प्रकाशन, सोलापुर, प्रथम संस्करण १९५० ई० ।
- ***वेदान्तवीरशैवचिन्तामणि*** :- निरूनञ्जणार्य, बारदमल्लप्पवसप्पा प्रकाशन, सोलापुर, प्रथम संस्करण १९८८ ई० ।
- ***शिवसूत्र*** :- वसुगुप्त, शिवोऽहं सागर ग्रन्थमाला प्रकाशन खेड़ा, गुजरात, प्रथम संस्करण, १९८४ ई० ।
- ***शिवतत्त्वरत्नाकर*** :- केलवदीरबसवराज, बेनगल रामराव मद्रास प्रकाशन, प्रथम संस्करण १९३६ ई० ।

- ***शक्तिसंगमतन्त्र (प्रथम भाग काली खण्ड)*** :- (सम्पादक) यशवंत गणेश सुखटणकर, बड़ौदा ओरियन्टल् इन्स्टीट्यूट् १९३२ ई० ।
- ***शिवपुराण*** :- संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९८८ ई० ।
- ***शिवज्ञानबोधोपन्यास*** :- निगमज्ञानदेशिक, (संपादक) टी० जानसन , राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, लोकप्रिय साहित्य ग्रन्थमाला-२ ।
- ***शिवशतक*** :- गोकुलनाथ, (प्रधान संपादक) डॉ० राधावल्लभ त्रिपाठी, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, जनकपुरी नई दिल्ली, संस्करण २०१०, लोकप्रिय साहित्य ग्रन्थमाला-२१ ।
- ***साम्बपञ्चाशिका*** :- पेनमैन प्रकाशन, नई दिल्ली, नई दिल्ली १९९९ ई० ।
- ***सौरसंहिता*** :- राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरूपति, आन्ध्रप्रदेश, प्रथम संस्करण, २००० ई० ।

(B) द्वितीयक ग्रन्थ (Secondary Source) :-

(a) स्वतन्त्र ग्रन्थ (Independent Text) :-

- ***अर्थसंग्रह*** :- लौगांक्षि भास्कर, (हिन्दी व्याख्याकार) स्व० डॉ० वाचस्पति त्रिपाठी, चौखम्बा पब्लिशर्स, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, षष्ठम संस्करण, २००२ ई० ।
- ***आगममीमांसा*** :- पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी, श्रीलालबहादुरशास्त्रीसंस्कृतविद्यापीठ, नई दिल्ली-१६, प्रथम संस्करण १९८२ ई० ।
- ***तर्कसंग्रह*** :- अन्नम्भट्ट, डॉ० दयानन्द भार्गव, मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण, १९७१ ई० ।
- ***दुर्गाभक्तितरङ्गिणी*** :- विद्यापति ठक्कुर, (सम्पादक) काशीनाथ मिश्र, कामेश्वर सिंह दरभङ्गा संस्कृत विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभङ्गा, बिहार, प्रथम संस्करण २००१ ई० ।
- ***दाम्पत्य जीवन का आदर्श*** :- गीताप्रेस गोरखपुर, ३५वाँ पुनर्मुद्रण, २०११ ई० ।
- ***न्यायमञ्जरी*** :- जयन्त भट्ट, अनुवादक सिद्धेश्वर भट्ट-शशिप्रभा कुमार, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली-९४, प्रथम संस्करण २००१ ई० ।
- ***नारी शिक्षा*** :- गीताप्रेस गोरखपुर, ५९वाँ पुनर्मुद्रण, २०११ ई० ।
- ***ब्रह्मसूत्राणुभाष्य (१-४ भाग)*** :- वल्लभाचार्य, (गोस्वामिपुरूषोत्तमभाष्यप्रकाशसहित), अक्षय प्रकाशन नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, २००३ ई० ।

- ***बसव दर्शन :-*** स्व० टी० एन० मल्लप्पा, (अनुवादक) डॉ०टी०जी० प्रभाशङ्कर 'प्रेमी', बसव समिति, बेन्गलूर-१, प्रथम संस्करण, १९८३ ई०।
- ***भारतीय दर्शन का इतिहास (भाग ५) :-*** डॉ०एस० एन० दासगुप्त, (अनुवादक) सुश्री पी० मिश्रा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर-४, प्रथम अनुदित संस्करण, १९७५ ई० ।
- ***भारतीय दर्शन :-*** आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, पुनर्मुद्रित संस्करण २००१ ई० ।
- ***भारतीय दर्शन का इतिहास (भाग ५) –*** डॉ० एस० एन० दास गुप्त, अनुवादक, सुश्री पी० मिश्रा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर-४, प्रथम अनुदित संस्करण, १९७५ ई० ।
- ***विज्ञान का इतिहास :-*** प्र० ना० जोशी, अनुवादक, किशोर दिवसे, संवाद प्रकाशन, मुम्बई, प्रथम संस्करण फरवरी २००८ ई० ।
- ***शैव दर्शन बिन्दु*** :- डॉ०कान्तिचन्द्र पाण्डेय, संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९७७ ई० ।
- ***शिवस्तोत्ररत्नाकर :-*** गीताप्रेस गोरखपुर, २३वाँ पुनर्मुद्रण, २०११ ई० ।
- ***श्री शिव महापुराण :-*** (सम्पादक) शशिकांत, नूतन पाकेट बुक्स, ईश्वरपुरी, मेरठ-२ ।
- ***श्रीमद्भगद्गीता यथारूप :- भक्ति वेदान्त ट्रस्ट, मुम्बई १९० ई० ।***
- ***षड्दर्शन रहस्य :-*** पण्डित रङ्गनाथ पाठक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् , पटना, बिहार, प्रथम संस्करण १९५८ ई०, द्वितीय संस्करण १९८९ ई० ।
- ***सिद्धान्तशिखामणि मीमांसा*** :- (सम्पादक) राष्ट्रियपण्डित व्रजवल्लभ द्विवेदी, (प्रकाशक) शैव भारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण २००० ई० ।
- ***संस्कृत एवं अभिनव भारत :*** - रामकृष्ण शर्मा, नाग प्रकाशक, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९८९ ई० ।
- ***संक्षेपशारीरकभाष्य*** :- सर्वज्ञात्म मुनि, (रामस्वामितीर्थविरचितान्वयार्थप्रकाशिकाटीकासहित), (सम्पादक) पं० भगुशास्त्री वझे, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, द्वितीय संस्करण, १९९२ ई० ।
- ***हिन्दू दर्शन-एक सामाजिक दृष्टि*** :- डॉ०कर्ण सिंह, भारतीय ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण २००१ ई० ।
- ***हिन्दी एवं कन्नड़ साहित्य की प्रमुख धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन :-*** डॉ० एम० एस० कृष्णमूर्ति, जवाहर पुस्तकालय मथुरा ।

- ***Introduction to Srikarbhasya*** :- C. Hayavadana Rao, Karnataka, 1938 .
- ***The Stanzes on Vibration*** :- Mark S.G. Dyczkowski (New york), Dilip Kumar Publishers, Varanasi, First Edition 1994.
- ***Tantras their Philosophy & Occult Secrets*** :- D.N. Bose, Eastern Book Linkers, New Delhi, First Edition, 2001.

(b) शोध-प्रबन्ध (Research) :-

- ***शक्तिविशिष्टाद्वैततत्त्वत्रयविमर्श: (डी० लिट्० थिसिस)*** :- डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान,जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, १९९६ ई० ।
- ***सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा (पी० एच० डी० थिसिस)*** :- डॉ०चन्द्रशेखर शिवाचार्य, (प्रकाशक) शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जङ्गमवाड़ी मठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण १९८९ ई० ।
- **A Study of Sivyoga as preached & practiced by Virshaiva Mystics** :- (Ph. D. Thesis), V.S. Kambi, Karnataka University,1968 .
- **Satsthal in Virshaivism, A Philosophical Study** :- (Ph. D. Thesis) (V.S. Kambi), Karnataka University, 1975.
- **Virshaiva Concept of Shakti** :- (Ph. D. Thesis) N. G. Mahadevappa , University of Mysore ,1978 .

(c) पत्र-पत्रिकायें (Journals & Magzins) :-

- ✓ **Heritage of Kashmiri pundits as " Abhinavagupta and the Shaivite traditions of Kashmir** :- Sants and Savants of the Saradadesa :- Dr. Rajnish Mishra, pubished in pentageon press, 2009 .

- ✓ **S.B.S. Studies (Val. ii)** :- Some Aspects of Virashaiva Philosophy : Gopinath Kaviraj .
- ✓ **कल्याण (मासिक पत्रिका) शिवाङ्क** :- गीताप्रेस गोरखपुर १९९० ई० ।
- ✓ **ब्रह्मविद्या (द अड्यार लाइब्रेरी बुलेटिन)** :- चेन्नई, २००८-२००९ ई० ।
- ✓ **भावन (त्रैमासिक)** :- गुरूकुल, उत्तराखण्ड, २०११ ई० ।
- ✓ **भारती (त्रैमासिक)** : भारतीय भवन, जयपुर, राजस्थान २०११ ई० ।
- ✓ **लोकसंस्कृतम् (त्रैमासिक)** :- संस्कृत कार्यालय, अरविन्दाश्रम, पुदुच्चेरी,२००७ ई० ।
- ✓ **सागरिका (त्रैमासिक)** :- हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, २००९ ई० ।
- ✓ **सम्बोधि (मासिक)** :- एल० डी० इन्स्टीट्यूट आफ इन्डोलोजी, अहमदाबाद,२०१० ई० ।

(d) शब्दकोश एवं विश्वकोश (Dictionary & Encyclopedia):-

- ➢ **अमरकोश** :- अमरसिंह, निर्णयसागर प्रेस मुम्बई, १९६१ ई० ।
- ➢ **अमरकोश** :- अमरसिंह, (सम्पादक) प्रो० सत्यदेव मिश्र, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, प्रथम संस्करण २००५ ई० ।
- ➢ **पारिजात कोश (संस्कृत-हिन्दी शब्दार्थकोश)** :- पं० ईश्वरचन्द्र, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, २००५ ई० ।
- ➢ **भारतीय दर्शन बृहत्कोश** :- बच्चूलाल अवस्थी, शारदा पब्लिशिंग हाउस, २००४ ई० ।
- ➢ **वाचस्पत्यम् (छः भाग)** :- चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, ग्रन्थ संख्या-१३, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, १९६९ ई० ।
- ➢ **शब्दकल्पद्रुम (पाँच भाग)** :- चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, ग्रन्थ संख्या-१३, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, १९६७ ई० ।
- ➢ **संस्कृत वाङ्मय कोश (प्रथम खण्ड)** :- (सम्पादक) डॉ० श्रीधर वर्णेकर, भारतीय भाषा परिषद्, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९८८ ई० ।
- ➢ **English-Sanskrit Dictionary** :- Moniar Williams, Munshiram Manoharlal, Delhi, 1976 .
- ➢ **Encyclopedia of Indian Philosophies** :- Karl H. Potter, Section-ii, Motilal Banarasidas, New Delhi, First Edition,1970 .

➢ **Oxford English-English Hindi Dictionary** :- (Ed.) Dr. Suresh Kumar & Dr. Ramnath Sahai, Oxford University Press, 2008 .

(e) अन्तर्जाल (Internet) :-

- www.encyclopedia.com
- www.pustak.org/bs/home.ph?bookid=6335
- www.hiwikipedia.org/wiki/शैव
- www.hiwikipedia.org/wiki/वीरशैव
- www.veershaivlingayat.com
- veershaiv@gmail.com
- www.lingayat.com
- www.en.wikipedia.org/wiki/lingayatism
- www.Lingayatmatch.com
- www.lingayat.in
- www.Vindhyawasini.blogspot.com
- www.lingayat.tripad.com/veershaiv.html
- www.itpindia.org/historical-studyofshaivsidhantaintamilnadu.html

(f) साक्षात्कार (Interview) :-

- **डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य** :- (श्रीकाशी जगद्गुरू) जङ्गमवाड़ी मठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश ।
- **डॉ० सिद्धराम शिवाचार्य** :- (श्रीशैल जगद्गुरू) आन्ध्रप्रदेश ।
- **डॉ० वाहिद नसरू** :- सहाचार्य (संस्कृत), (सी० सी० ए० एस०) काश्मीर विश्वविद्यालय ।
- **डॉ० ओमप्रकाश स्वामी** :- सहायक आचार्य, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-६७ ।

- **नारायनन (सम्पादक, संहिता) :-** कोयम्बटूर, तमिलनाडु ।